लोगस्स : एक साधना

भाग - 2

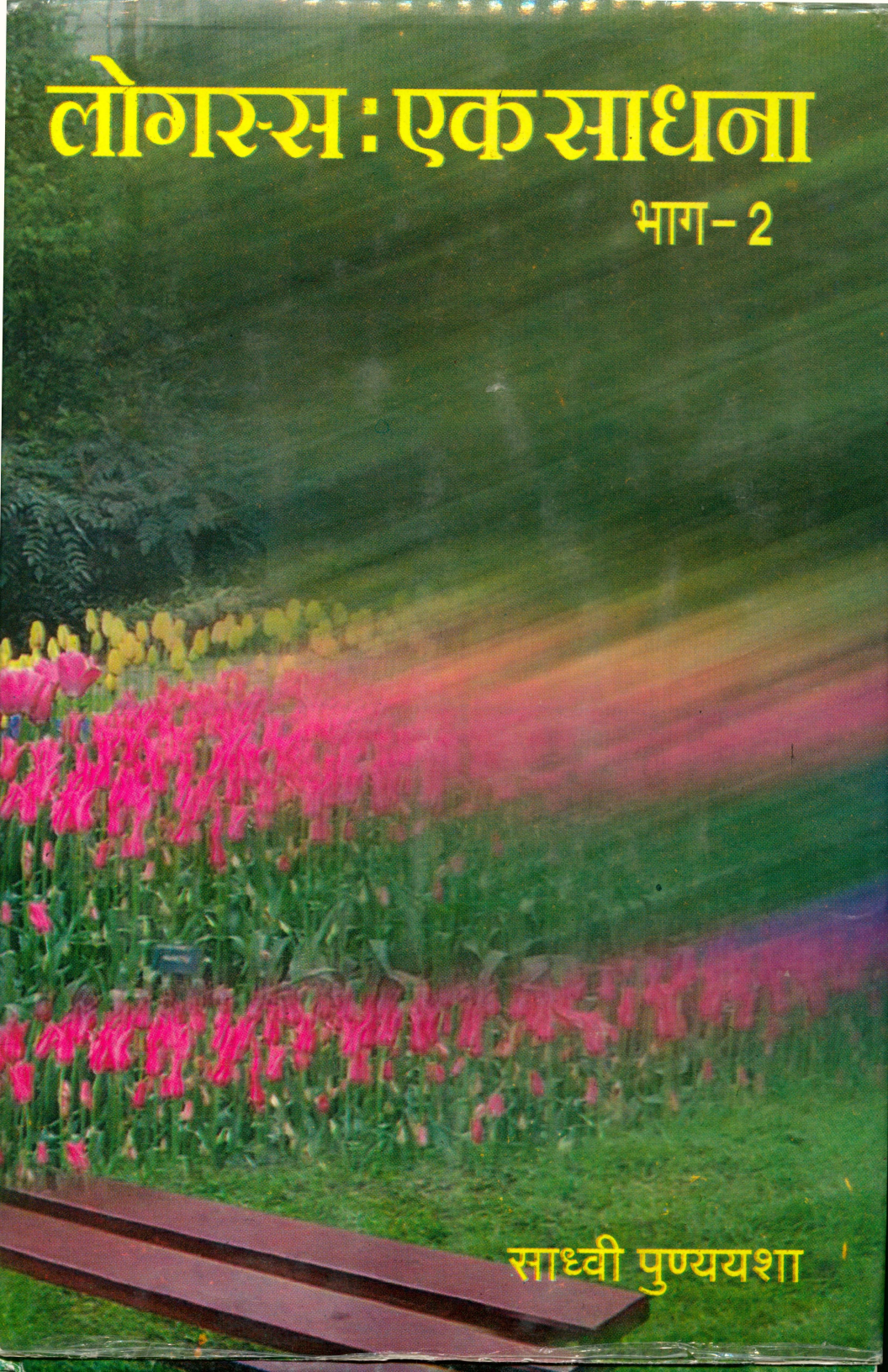

साध्वी पुण्ययशा

आत्मज्ञान के लिए आत्मान्वेषण, सत्य की खोज, तत्त्वों की जिज्ञासा तथा आत्मानुभूति के बीजों का वपन करके चैतन्य की वेदिका पर आनंद का वटवृक्ष उगाने की अपेक्षा है। उस वटवृक्ष के अनेक बीजों में एक शक्तिशाली और उर्वर बीज है आवश्यक सूत्र में वर्णित 'चतुर्विंशतिस्तव-लोगस्स।' सीमित शब्दों में असीमित व्यक्तित्वों की गौरवगाथा के अमिट हस्ताक्षर व मंत्राक्षर इस स्तुति में विद्यमान हैं। इसकी साधना सर्वकाल एवं सर्वदृष्टि से मंगलकारी, कल्याणकारी, शुभंकर और सिद्धिदायक है। यह स्तव शक्ति का धाम है। इसके प्रत्येक पद्य में समाया हुआ है आनंद, आनंद, आनंद, परमानंद। प्रस्तुत कृति लोगस्स में अन्तर्निहित परमानंद व अनेक रहस्यों को उद्घाटित करने का एक विनम्र प्रयास है।

लोगस्स : एक साधना

भाग-२

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

लोगस्स : एक साधना

भाग-२

साध्वी पुण्ययशा

© आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

लोगस्स : एक साधना भाग-२

लेखक : साध्वी पुण्ययशा

प्रकाशक : आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११० ००२

संस्करण : सन २०११

मूल्य : सत्तर रुपये

प्रकाशन सहयोग : श्रद्धा की प्रतिमूर्ति स्व. श्रीमती मनफूलीदेवी डागा
(धर्मपत्नी-स्व. श्री कोडामलजी डागा) की पुण्यस्मृति में हनुमानमल,
राजेन्द्रकुमार, विनोदकुमार, शान्तिलाल एवं संजयकुमार डागा,
बीदासर-मुम्बई

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

LOGASSA : EK SADHNA Part-2 by Sadhvi Punyayasha **Rs. 70/-**

समर्पण

तुलसी महाप्रज्ञ की
अभिनव कलाकृति
महान् श्रुतधर महातपस्वी
आचार्यश्री महाश्रमणजी
के ५०वें जन्म महोत्सव
अमृत महोत्सव
के शुभ अवसर पर
भावभरी अभिवंदना
अमृत वंदना
निरामयता व चिरायुष्कता
की मंगल भावना
के साथ श्रद्धा प्रणत
समर्पित
श्रीचरणों में
लोगस्स एक साधना
भाग-२

आशीर्वचन

जैन प्राकृत वाङ्मय में 'उक्कित्तणं-लोगस्स' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। उसमें वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गई है और उसके साथ-साथ कुछ पवित्र कामनाएं भी की गई हैं। उसकी साधना अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है।

साध्वी पुण्ययशाजी ने एक अच्छा ग्रंथ तैयार किया है। पाठकों को उससे साधना का पथदर्शन प्राप्त हो। शुभाशंसा।

केलवा (राजस्थान)
२१ अक्टूबर २०११

—आचार्य महाश्रमण

स्वकथ्य

जीवन अनंत रहस्यों का अथाह सागर है। इसके अतल में असंख्येय अनमोल मणिमुक्ता छिपे हुए हैं। पदार्थों में आसक्त बना मनुष्य उनकी उपेक्षा करता है। वह अपने से भिन्न नक्षत्र, सौरमंडल व जड़ पदार्थों की खोज तथा उपलब्धि में अपना सारा जीवन दांव पर लगा देता है परन्तु "मैं कौन हूँ" इस रहस्य को जानने की दिशा में उत्कंठित नहीं होता है।

मोमबत्ती जलाते हुए शिक्षक ने विद्यार्थियों से पूछा—"यह प्रकाश कहाँ से आया?" गुरु के इस प्रत्युत्तर में एक प्रतिभाशाली बालक कन्फ्यूशियस ने एक फूंक से उस मोमबत्ती को बुझाते हुए कहा—"गुरुदेव! आपके सवाल का जवाब दें उससे पूर्व आप हमें यह बताये कि वह प्रकाश कहाँ गया?"

गुरु शिष्य का यह संवाद अध्यात्म जगत् के उपरोक्त रहस्य "मैं कौन हूँ" के अनुसंधान का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय हो सकता है। इस संवाद की गहराई में अवगाहन करने से एक सत्य तथ्य प्रतिभाषित होता है कि पदार्थ जगत् की रोशनी दियासलाई से आती है और फूंक लगाने से चली जाती है पर आत्मजगत् की रोशनी शाश्वत है केवल उसे उद्घाटित करने की कला चाहिए। उस कला की पारंगतता के लिए दृष्टि को बाइफोकल बनाने से दोनों जगत् दृष्टिगोचर होते रहेंगे।

'जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पेठ' महाकवि बिहारी की उक्त उक्ति को जीने वाले जीवन और साधना के रहस्यों को तथा मंत्र व विद्या की अलौकिकता को आत्मसात् एवं उद्घाटित करने की कला हासिल करते हैं। वे ऋषि मनीषी अपनी अन्तश्चक्षु से सत्य का साक्षात्कार करते हैं और संसार को उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। आत्म साक्षात्कार की इस कला के कोविद अर्हत् ऋषभ से सम्राट भरत ने, अर्हत् अजित से सम्राट सगर ने, अर्हत् नेमि से पांडवों ने तथा अर्हत् महावीर से राजा श्रेणिक ने अपने-अपने समय में एक ही प्रकार की

जिज्ञासा की—"भंते! जीवन का सार क्या है?" सभी अर्हन्त भगवन्तों ने एक ही शब्द में समाधान देकर गागर में सागर भर दिया। वह शब्द था—"आत्मज्ञान"।

अध्यात्म का आधारभूत तत्त्व है आत्मा। आत्मा स्वयं सिद्ध और स्वयंभू है। आत्म-मुक्ति ही परमात्मत्व की उपलब्धि है। आत्मज्ञान के लिए आत्मान्वेषण, सत्य की खोज, तत्त्वों की जिज्ञासा तथा आत्मानुभूति के बीजों का वपन करके चैतन्य की वेदिका पर आनंद का वटवृक्ष उगाने की अपेक्षा है। उस वटवृक्ष के अनेकों बीजों में एक शक्तिशाली और उर्वर बीज है—आवश्यक सूत्र में विवर्णित "चतुर्विंशति-स्तव"—"लोगस्स"। जिसमें जीवन निर्माण, विकास तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु 'आत्मकर्तृत्त्ववाद' का समञ्जन किया गया है। सीमित शब्दों में असीमित व्यक्तित्वों की गौरवगाथा के अमिट हस्ताक्षर व मंत्राक्षर इस स्तुति में विद्यमान हैं। एक व्यक्तित्व को भी सीमा में बांधना कठिन है वहाँ एक साथ चौबीस व्यक्तित्व विश्व की सर्वोच्च शक्तियां, संसार की सर्वोच्च उपलब्धियां जिनको सात पद्यों में गर्भित, मंत्रित, चमत्कृत एवं अलंकृत करना एक विचित्र, आलौकिक तथा पारदर्शी रहस्य है। ये सात पद्य परमात्म-पथ के परम पवित्र पगथिए हैं। अत्यन्त गूढ़ संक्षिप्त और रहस्यात्मक होने के कारण ये अपने एक-एक आरोहण के साथ-साथ गहरे अन्वेषण और गहरे अनुशीलन की अपेक्षा रखते हैं।

जैन शासन के पास यह एक अमूल्य निधि है। यदि ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह जीवन मूल्यों की आधारशिला है। इसमें जीवन कौशल के अद्‌भुत एवं अनुभूत सूत्र—ज्ञान-बोधि, दर्शन-बोधि और चारित्र बोधि तीनों संयुक्त रूप से निहित हैं जिनमें शांति और आध्यात्मिक शक्तियों का अखूट खजाना भरा है। जिस प्रकार खदान की गहरी खुदाई में अमूल्य हीरे-पन्ने प्राप्त होते हैं, सागर के गर्भ में महामूल्यवान निधि का भंडार समाया हुआ है उसी प्रकार लोगस्स ऊपर से दृश्यमान अपनी इस छोटी सी देह में अध्यात्मवाद का बहुमूल्य भंडार संजोये हुए है। इस लोगस्स महामंत्र को जप, स्वाध्याय, ध्यान की एकाग्रता से चेतन करने पर तथा अर्हत् व सिद्ध परमात्मा के साथ अद्वैत स्थापित करने पर चेतना की गहराई में अमूल्य तत्त्व, अभिसिद्धियां, अवधि ज्ञान, मनः पर्यवज्ञान तथा केवल-ज्ञान की उपलब्धि होती है।

यह कोई सिद्धान्त या शास्त्र नहीं है। यह साधना का संबोध है, शाश्वत एवं सामयिक जीवन-मूल्यों का समन्वय है। इसमें तत्त्वज्ञान की गूढ़ता है और उन गूढ़ तत्त्वों को सीधी सरल भाषा में कह देने की विशिष्ट रचनाधर्मिता है। इसकी अपरिमेय शक्तिमत्ता, विश्वविश्रुत प्रभावकता का कारण किसी महर्द्धिक देव की शक्ति नहीं अपितु देवाधिदेव वीतराग अरिहंत, सिद्ध इसके उपास्य होने के कारण

यह स्वतः ही ऐसा शक्ति संपन्न है कि महर्द्धिक देवों को भी इसके उपासकों के वशवर्ती रहना पड़ता है। वे भी उनको वंदन, नमस्कार करते हैं। छोटे-बड़े सभी कार्यों की सिद्धि के लिए यह सर्वश्रेष्ठ एवं सदैव सभी के लिए इष्ट-कारक, विघ्न-निवारक, मंगलदायक और शांतिप्रदायक ही है, यही इसकी सर्वोपरि विशिष्टता है। इसके एक-एक पद्य में अनंत गुण और अनंत भावों की अनुभूति अन्तर्निहित है तथा अर्हत् स्वरूप की अनंत-अनंत सुषमाएं हिलोरे ले रही है। "अरहंते कित्तइस्सं" कहते ही कर्म शत्रुओं के हंता, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के आदर्श प्रतीक सदेह मुक्त आत्माओं के गुण, कर्म, ज्ञान आदि की ओर बरबस ध्यान चला जाता है और उन गुणों से अपने जीवन को अलंकृत करने की भावना जागृत हो उठती है। तब वह उपासक सदाशयता से कहता है—"वंदे तद्गुण लब्धये" अर्थात् उन गुणों की उपलब्धि के लिए वंदन करता हूँ। उच्च कोटि का साधक जानता है—

चातक मीन पतंग जब, पिया बिन न रह पाय।
साध्य को पाये बिना, साधक क्यों रह जाय ॥

वस्तुतः गुणवत्ता से ही व्यक्ति की मूल्यवत्ता बढ़ती है। साधक के चित्त में विद्यमान निर्मलता, निर्मोहिता, निर्भीकता, निरहंकारिता की सुवास का सुवासित रहना ही उसकी मूल्यवत्ता का महनीय कारण है। तेरापंथ के दशम् अनुशास्ता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं आध्यात्मिक चेतना से लोगस्स की साधना का समग्र दृष्टिकोण निम्नोक्त रूप में प्रस्तुत किया है।

लोगस्स की साधना का समग्र दृष्टिकोण है—

आत्मा का जागरण
चैतन्य का जागरण
आनंद का जागरण
अपने परमात्म स्वरूप का जागरण
और अर्हत् स्वरूप का जागरण ॥

इस संदर्भ में कुछ अनादि-कालीन जिज्ञासाएं हैं, जैसे परमात्मा कैसा है? उसका स्वरूप क्या है? वह कहाँ है? साधक सिद्ध कब बनता है? इत्यादि।

कोई कहता है परमात्मा स्थान विशेष में है तो कोई कहता है वह सर्वत्र है। कोई कहता है वह सर्वगुण संपन्न है तो कोई कहता है वह गुणातीत है। कोई साकार तो कोई निराकार बताता है। इन उभरती जिज्ञासाओं का समाधान यदि महावीर वाणी में खोजें तो वह है—

सच्चं भयवं — सत्य ही भगवान है।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा — स्वयं सत्य को खोजें।
मेत्तिं भूएसु कप्पए — सबके साथ मैत्री करें।
संपिक्खए अप्पगमप्पएणं — आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें।

स्वयं सत्य को खोजें, सत्य ही भगवान है, आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें—इन वाक्यों ने अध्यात्म की दृष्टि को वैज्ञानिकता प्रदान की है और सबके साथ मैत्री करो—इस मन्त्र वाक्य ने वैज्ञानिक की संहारक शक्ति पर अनुशासन स्थापित किया है। वर्तमान युग का वैज्ञानिक पदार्थ विज्ञान से आत्मज्ञान की ओर मुड़ने का चिन्तन कर रहा है।

इन आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों को वैज्ञानिक सन्दर्भों से समझने पर स्वतः ही सारी जिज्ञासाएँ समाहित होने लगती हैं। जिस प्रकार व्यक्ति के पास वायुमण्डल में रेडियों और टेलीविजन की तरंगें हैं, लेकिन जब तक उसके पास रेडियों और उसका एरियल, टी.वी. और उसका एंटीना नहीं होगा तब तक वह उन्हें देख भी नहीं सकेगा और सुन भी नहीं सकेगा। परन्तु ज्योंहि ये साधन सामग्रियाँ उपलब्ध होंगी वह उन्हें देखने और सुनने में सफल हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार साधक को सिद्ध या परमात्मा बनने हेतु अथवा परमात्म स्वरूप के साक्षात्कार के लिए अपने हृदय में सत्य और श्रद्धा का एरियल अथवा एंटीना लगाने की अपेक्षा है।

तत्त्वतः एक सत्य से दूसरे सत्य की ओर अनवरत अनिरूद्ध गति ही जीवन की जीवन्तता है। महाकवि शेक्सपियर के शब्दों में "जिंदगी की कीमत जीने में है जीवन बिताने में नहीं"। सचमुच जीवन एक ऊर्जा है, एक महाशक्ति है, एक रहस्य है, एक साधना है और आनंद का एक महाग्रंथ है। सत्य की दिशा में प्रस्थित जीवन ही दिव्य एवं अभिनंदनीय हो सकता है। ऐसे जीवन की आराधना ही मानव जीवन की सर्वोपरि साधना और उपलब्धि है जैसा कि जैन आगमों में कहा गया है—

"पुरिसा परमचक्खू विप्परकम्मा"

अर्थात् पुरुष! तू परम चक्षु—अन्तर्दृष्टि को जगा और आत्मा से परमात्मा बनने की दिशा में विशेष पुरुषार्थ कर। आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने अतुलातुला (पृ. २०४) में इसी सत्य को उद्भाषित करते हुए लिखा है—

"सत्यात् परो नो परमेश्वरोऽस्ति"—सत्य से बढ़कर कोई ईश्वर नहीं है।

"सत्यस्य पूजा परमात्मपूजां—सत्य की पूजा परमात्मा की पूजा है।

इसी सत्य को परिभाषित एवं व्याख्यायित करते हुए महाप्राण महामना

आचार्य श्री महाश्रमणजी ने लिखा है—"वीतराग की साधना कषाय विजय की साधना है, एक शब्द में कषाय, दो शब्दों में राग-द्वेष, चार शब्दों में क्रोध, मान, माया, लोभ को जीतना मोह विजय और वीतरागता है।" किसी उर्दू शायर की निम्नोक्त पंक्तियों में भी इस सत्य को खोजा जा सकता है—

खुदा की तस्वीर दिल के आइने में है।
जब चाहो गर्दन झुका कर देख लो ॥

यद्यपि वीतराग परमात्मा की अनुत्तरता निर्बन्ध और शब्दातीत है फिर भी भक्त अपनी कर्म निर्जरा के साथ-साथ अपने मन को प्राञ्जल, परिमार्जित और निर्मल बनाने हेतु अपने भावों और शब्दों को स्तुतियों या मंत्रों के चौखट में बांधकर अपनी वाणी को मुखर करता है। यह विज्ञान सिद्ध निर्विवाद तथ्य है कि शब्द में अपरिमेय और अचिन्त्य शक्ति विद्यमान रहती है। कहा जाता है कि शंख ध्वनि से २२०० फीट क्षेत्र प्रदूषण मुक्त हो जाता है। तीर्थंकरों की देशना (प्रवचन) से छह माह तक बारह योजन की दूरी में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी आदि प्राकृतिक प्रकोप तथा बीमारियां नहीं होती हैं। आज तो ध्वनि तरंगों की बात को गहराई से जाना जा सकता है। कहते हैं कि एक प्रकार की ध्वनि के कारण कोणार्क के मंदिर में दरारें पड़नी शुरू हो गई हैं। रेडियो ऊर्जा से न केवल हमारी धरती पर दूर-दूर की आवाज़ों को सुना जा सकता है पर दूसरे ग्रहों-उपग्रहों तक संप्रेषित कर उनके रहस्यों को भी अनावृत्त किया जा सकता है।

मनुष्य के शरीर और मन पर भी ध्वनि का गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी परिप्रेक्ष्य में मंत्र शास्त्र का अध्ययन यह निष्कर्ष देता है कि मंत्रों के शब्द संयोजन के वैशिष्ट्य से ही सामर्थ्य उद्भूत होता है। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर स्वयं न शुभ होता है और न ही अशुभ किंतु उसमें शुचिता एवं अशुचिता विरोधी एवं अविरोधी वर्णों के योग से आती है। बीजाक्षरों में उपकारक एवं दग्धाक्षरों में घातक शक्ति निहित होती है। शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रभावों की तरह उनके वर्ण समूहात्मक प्रभाव को भी विभिन्न अनुभव क्षेत्रों में प्रत्यक्ष होते पाया गया है। यद्यपि सब अक्षरों में मंत्र बनने का सामर्थ्य है किंतु उनका उचित संयोजन करने वाला मंत्रवेत्ता दुर्लभ होता है।

अमंत्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

मंत्र में प्रायोजित अक्षर वर्ण अथवा उसके समूहात्मक शब्दों का संयोजन मात्र ही कार्य साधक शक्ति हो, केवल ऐसी बात भी नहीं है। इनमें समानान्तर

अन्य अनेक अप्रकट शक्तियां भी कार्य करती हैं, वे हैं–

- मंत्र योजक का मनोभाव
- उसकी लोकोपकारक वृत्ति
- उसका तपोबल
- उसका निश्छल सद्भाव
- उसकी निर्मल सदाशयता
- उसका मंत्र शक्ति के प्रति अखण्ड विश्वास

लोगस्स में उक्त सभी विशेषताओं का समवेत्, समायोजन होने के कारण इसकी शक्ति एवं शुचिता अनुपम है, अद्वितीय है। यह आगम वाणी स्वाध्याय, ध्यान, जप, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा, स्तुति, प्रायश्चित विशुद्धि इत्यादि अनेक रूपों में साधना के क्षेत्र में प्रयुक्त और पुनरावर्तित होती रहती है।

ध्वनि पुद्गल की पर्याय है, जो 'वीचि तरंग न्यायेन' प्रसारित होती है। अर्थात् ध्वनि एक जगह से दूसरी जगह लहरों के माध्यम से पहुँचती है। यह जैन दर्शन की धारणा विज्ञान सम्मत्त है। मंत्र जप के रूप में किसी भी मंत्र की पुनरावृत्ति की महत्ता को कर्ण अगोचर तरंगों से समझा जा सकता है। इन तरंगों की उत्पत्ति हेतु ओसीलेटर यंत्र का मुख्य भाग–बिल्लोर की प्लेट को बिजली की ए.सी. धारा से जोड़ने पर उसकी सतह कंपन करने लगती है। इस प्लेट का कंपन प्रति सैकण्ड कई लाख से कम नहीं होता। इस प्रकार सतह के कंपन के कारण चारो ओर की वायु में शब्द की सूक्ष्म लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। एक सैकण्ड में लाख शब्द का बोलना तो मनुष्य की शक्ति से परे है अतः साधक मंत्र की तरंगों को कर्ण अगोचर बनाने हेतु उसे हजारों लाखों बार पुनरावर्तित करता है।

कुछ वर्षों पूर्व ग्राहक और नील नामक दो वैज्ञानिकों ने आस्ट्रेलिया के मोलबोर्न नगर की एक भारी भीड़ वाली सड़क पर शब्द शक्ति का वैज्ञानिक प्रयोग किया और सार्वजनिक प्रदर्शनों में सफल रहे। परीक्षण का माध्यम भी एक निर्जीव कार जिसे वे अपने इशारों से नचाना चाहते थे और यह सिद्ध करना चाहते थे कि शब्द शक्ति की सहायता से बिना किसी चालक के कार चल सकती है। हजारों की संख्या में लोगों ने देखा कि संचालक के कार 'स्टार्ट' कहते ही कार चलना प्रारंभ हो गई, 'गो' को सुनते ही गति पकड़ ली। लोग देखते ही रह गये कि निर्जीव कार के भी कान होते हैं। जैसे ही थोड़ी दूर जाकर संचालक ने कहा 'हाल्ट' तो वह कार तुरंत रुक गई।

यह कोई हाथ की सफाई का काम नहीं था वरन् उसके पीछे विज्ञान का एक निश्चित सिद्धान्त काम कर रहा था। ग्राहक के हाथ में एक छोटा सा

ट्रांजिस्टर था जिसका काम यह था कि आदेश कर्त्ता की ध्वनि को एक निश्चित फ्रीक्वेन्सी पर विद्युत शक्ति के द्वारा कार में 'डेस-बोर्ड' के नीचे लगे नियंत्रण कक्ष तक पहुँचा दे। उसके आगे 'कार-रेडियों' नाम का एक दूसरा यंत्र लगा हुआ था। इस यंत्र से जब विद्युत चुम्बकीय तरंगें टकराती तो कार के सभी पुर्जे अपने आप संचालित होने लगते हैं। लोगों ने इसे चमत्कार की संज्ञा दी परन्तु यह वास्तव में शब्द शक्ति का विकसित हैं प्रयोग था जिसे आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों का आधार प्राप्त था। इस प्रकार ओर भी कई आधुनिक विज्ञान के प्रयोग शब्द शक्ति के संबंध में हैं जो वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर प्राचीन शास्त्रों में वर्णित 'शब्द-शक्ति' का समर्थन करते हैं।

प्राचीन मान्यता ऐसी है कि देवताओं के विमान मंत्र की शक्ति से चलते थे इंजिन की शक्ति से नहीं। जैन आगमों में विश्लेषित अवस्थित नामक घंटा एक स्थान पर बजता है, उसकी ध्वनि से प्रकंपित होकर दूर-दूर तक हजारों लाखों घंटे बज उठते हैं अतः आज ध्वनि विज्ञान महानतम उपलब्धि माना जाता है। अतएव यह बात समझ में आती है कि मंत्र की शक्ति से कार्य का होना कोई असंगत बात नहीं है।

कुछ अनुसंधानों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि सिंह में अग्नि तत्त्व की प्रधानता होने के कारण वह मांस भक्षी होता है और गाय में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता होने के कारण वह मांस भक्षी नहीं है।

शब्द विज्ञान सिद्ध करता है कि 'खं' शब्द का जप करने से आकाश तत्त्व की अभिवृद्धि होने के कारण कौटुम्बिक-कलह-संघर्ष में शांति लाई जा सकती है। इसका कारण है शरीर में तत्त्वों की सजातीयता होती है तो पराये भी अपने बन जाते हैं और विजातीयता होती है तो सहोदर भी शत्रु बन जाते हैं।

एक अन्य शोध के अनुसार 'बं' का सवा लाख उच्चारण करने से जोड़ों का दर्द, वमन, कफ, गैस डाइबिटिज आदि बीमारियों से मुक्ति पाने में सहारा मिलता है।

ला ला...के उच्चारण में गंठिया रोग निवारण की अद्‌भुत क्षमता पाई गई है।

इसी प्रकार 'सं' ध्वनि अथवा 'हूँ' ध्वनि से लीवर की स्वस्थता, 'हां' ध्वनि से फेफड़ों की स्वस्थता, 'हैं' ध्वनि से कण्ठ की स्वस्थता, 'हः' ध्वनि से मस्तिष्क की स्वस्थता तथा स्मरण शक्ति का विकास होता है। 'ह्रीं' ध्वनि से (दर्शन-केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर) दर्शन विशुद्धि के साथ-साथ प्रभावशाली आभामंडल का निर्माण होता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने एक जगह लिखा है लं...लं...लं यह

लयबद्ध जाप हृदय रोग की समस्या के लिए महान औषध है। "हां हीं हूं हों हं हः" हृदय के लिए यह उपयोगी मंत्र है यह अनेक लोगों के अनुभवों से प्रमाणित है। 'ॐ अर्हं' (आनंद-केन्द्र पर) ध्वनि ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिए उत्तम है।

ये सारे संदर्भ इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि किसी भी द्रव्य की ऊर्जा को पकड़ने और उसको दूसरों तक पहुँचाने के लिए उस वस्तु में विद्यमान विद्युत क्रम को समझने की अपेक्षा रहती है। इसके लिए प्राचीन ऋषियों ने एक विधि निकाली। उन्होंने अग्नि को जलते हुए देखा। अग्नि की तीव्र लौ से 'र' ध्वनि का उन्होंने साक्षात्कार एवं श्रवण किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अग्नि से 'र' ध्वनि उत्पन्न होती है अतः 'र' से अग्नि उत्पन्न की जा सकती है। बस 'र' अग्नि बीज के रूप में मान्य हो गया। इसी प्रकार पृथ्वी की स्थूलता से 'लं' ध्वनि का निर्माण हुआ। कोई तरल पदार्थ जब स्थूल होने की प्रक्रिया से गुजरता है तो 'लं' ध्वनि होती है। जल प्रवाह से 'वं' ध्वनि प्रकट होती है और 'वं' से जल भी पैदा किया जा सकता है। रडार आदि का आविष्कार इसी प्रक्रिया के बल पर हुआ था।

मंत्र वादियों तथा मंत्र द्रष्टाओं ने इन्हीं तत्त्वों एवं तथ्यों के अनुसार मंत्रों की रचनाएं की हैं। इस प्रकार वर्णों को शक्ति समुच्चय के साथ पकड़ा गया। उदाहरणार्थ लोगस्स के प्रथम परमेष्ठी वाची 'अर्हं' (अरहंत) शब्द को ही लें। अहं मूल शब्द था। अहं में 'अ' प्रपंच जगत का प्रारम्भ करने वाला है और 'ह' उसकी लीनता का द्योतक है। अहं के अन्त में बिंदु (.) यह लय का प्रतीक है। बिंदु से ही सृजन है और बिंदु में ही लय है। योगियों ने अनुभव किया सृजन और मरण की इस क्रिया में जीवन शक्ति का अभाव है अर्थात् जीवन शक्ति को चैतन्य देने वाली अग्नि शक्ति का अभाव है अतः ऋषियों ने 'अहं' को अर्हं का रूप दिया। उसमें अग्नि-बीज शक्तिवाची 'र' को जोड़ा। इससे जीवात्मा को उठकर परमात्मा तक पहुँचने की शक्ति प्राप्त हुई। इस प्रकार 'अर्हं' का विज्ञान बड़ा सुखद आश्चर्य पैदा करने वाला सिद्ध हुआ। 'अ' प्रपंच जीव का बोधक। बंधन बद्ध जीव का बोधक है और 'ह' शक्तिमय पूर्ण जीव का वाचक है लेकिन 'र' क्रियमाण क्रिया से युक्त—उद्दीप्त और परम उच्च स्थानों में पहुँचे परमात्म तत्त्व का बोधक है।

इस प्रकार विभिन्न कार्यों के लिए शब्दों को मिलाकर मंत्र बनाये जाते हैं। मंत्रों के प्रकार, प्रयोजन, प्रभाव अनेक हैं। उनको विधिवत समझने और जीवन में उतारने का संकल्प होने पर मंत्र विज्ञान स्पष्ट और कार्यकर होगा। यह एक वैज्ञानिक मान्यता है कि ध्वनि का हमारे चित्त की स्थितियों और विचारों की शृंखला पर अमित प्रभाव पड़ता है। हम हमारे व्यवहारिक जीवन में यह अनुभव भी करते हैं कि मंदिर में सुनाई देने वाली वीणा या बांसुरी की तान से चित्त पवित्र

होता है तो नाटक-नौटंकी में किसी कामिनी की पायल घुंघरुओं की रूनक-झूनक से चित्त उत्तेजित भी हो उठता है। गालियां और भजन दोनों से निकलने वाले स्वरों का प्रभाव अलग-अलग होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में 'लोगस्स' के ध्वनि प्रकंपनों एवं वर्ण समूहों को मैं एक महाशक्ति के रूप में देखती हूँ।

विशिष्ट महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि 'लोगस्स-महामंत्र' में संयोजित वर्ण समूह से चित्त में असाधारण ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं और उन असाधारण एवं चामत्कारिक तरंगों से ऋणात्मक या धनात्मक विद्युत शक्ति पैदा होती है उससे कर्म-कलंक ध्वस्त हो जाता है तथा अनेक ऋद्धियां-सिद्धियां प्राप्त होती हैं शर्त एक ही है कि अर्हत् सिद्ध परमात्मा से अद्वैत स्थापित किया जाये। यह सब साधना के प्रकर्ष से ही संभव हो सकता है।

लोगस्स का अन्वेषण एवं अभिव्यक्ति एक दिव्य साधना के रूप में उल्लिखित होने के कारण इस कृति का नाम "लोगस्स—एक साधना" रखा गया है। अर्हत् व सिद्ध भगवन्तों का विराट स्वरूप एक लघुकाय पुस्तक में कैसे समा सकता है? भास्कर के विश्वव्यापी आलोक को एक पक्षी अपने घोंसले में बंद करने का गर्व कैसे कर सकता है? फिर भी वह अपने घोंसले के अंधकार को तो दूर कर ही सकता है। क्या विराट महासागर में से एक-एक जल-कणों को निकालकर दिखाना उस महासागर का परिचय हो सकता है? फिर भी जो कुछ बन पाया है यह उन महापुरुषों के प्रति भक्ति के उद्‌गार तथा हार्दिक श्रद्धा का एक लघु रूप है। अर्हत्-सिद्ध भगवन्तों के प्रति मेरे अन्तस्तल में विद्यमान श्रद्धा और भक्ति ही इस रचना की पृष्ठभूमि है।

चैतन्य की अमृतकथा, लोकमंगल की भावना, अमृतत्व की खोज व प्राप्ति ही इस कृति को लिखने का उद्देश्य रहा है। कर्मों का क्षय ही चेतना को विकसित करता है। इस सत्य तथ्य को मध्य नजर रखते हुए इस ग्रंथ में संसार के बंधन और मोक्ष का समाधान प्रस्तुत करने के साथ-साथ ध्यान की प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराया गया है तो दूसरी तरफ लोगस्स के व्यावहारिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक स्वरूप को भी अभिव्यक्त करने का प्रयास रहा है। क्योंकि विज्ञान का तथ्य तथा दर्शन का सत्य साहित्य के धरातल पर सुन्दर का रूप धारण कर जन सामान्य के लिए आह्लादक बन जाता है।

संयम पर्याय के पच्चीस वर्षों की परिसमाप्ति पर वीर भूमि बीदासर में जब मैंने नमस्कार महामंत्र भाग १ व भाग २—दोनों पुस्तकें श्रीचरणों में समर्पित की तब चारों तरफ से अपनी दिव्य ज्योत्सना से आह्लादित कर गुरुदेव (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) ने अपने चरणों की इस नन्हीं सी रजकण को पुरुषार्थी बनने का सामर्थ्य प्रदान करते हुए कहा—"पुण्ययशा का अध्ययन अच्छा है, यह कुछ न कुछ

करती रहती है, इस वर्ष ओर अधिक विकास करो''। इसी क्रम में मातृ हृदया महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्री जी ने आशीर्वाद की एक पंक्ति में लिखा–''साध्वी पुण्ययशाजी के श्रम की सार्थकता इसी में है कि उनके मन में पुरुषार्थ की लौ जलती रहे।'' उस प्रसन्न मुद्रा और संजीवनी प्रदान करने वाले इन आशीर्वचनों से मेरी कार्यशीलता को जो गति मिली, जो प्राणों को अभिनव ऊर्जा मिली कृतज्ञता ज्ञापित करने में शब्द असमर्थ हैं। मैं लोगस्स की भूमिका में बैठकर उस महागुरु को प्रणाम करती हूँ कि उनकी अहेतुकी कृपा एवं सहज प्रेरणा मेरे मानस मंदिर में सदैव स्फूर्त होती रहे।

ज्योंहि गुरुदेव को पुस्तकें समर्पित कर मैं शासन गौरव साध्वीश्री राजीमति जी के पास पहुँची आपने प्रसन्नता से मुझे उत्साहित करते हुए कहा–''आगे क्या करना है''? मेरे मुँह से सहज ही निकला–''लोगस्स के बारे में लिखना है।'' बस उसी दिन से एक लक्ष्य बन गया कि अब अपनी चेतना को लोगस्स के अन्वेषण में अनुप्राणित करना है।

फरवरी २००६ में बीदासर से गुरुदेव का मंगलपाठ सुन हमने जोधपुर (सरदारपुरा) चातुर्मास हेतु विहार किया। दो दिवस पश्चात् लाड़नू पहुँचते ही गुरुबल और गुरु शक्ति को आधार बनाकर मैंने लोगस्स पर लिखना शुरू किया। गुरु के कृपा भरे आशीर्वाद से शिष्य की शक्ति और कर्मठता को विशेष गतिशीलता मिलती है, यह मैंने पग-पग पर अनुभव किया है। लक्ष्य, लगन और लेखन की तत्परता के साथ-साथ मुझे व्यक्त अव्यक्त गुरुबल से सतत् मार्गदर्शन मिलता रहा है। कल्पना ही नहीं थी कि इतना शीघ्र यह कार्य हो जाएगा। क्योंकि नमस्कार महामंत्र पर तो बहुत साहित्य सामग्री उपलब्ध हुई थी। परन्तु लोगस्स पर कोई विशेष साहित्य नहीं मिला। फिर भी गुरुबल और संकल्प-बल मेरे साथ था। इसलिए छुट-पुट सामग्री मिलती रही और उत्साह पूर्वक लेखन का कार्य चलता रहा। इस मध्य कुछ दिन हमारा नीमच (M.P.) में रहना हुआ। वहाँ प्रोफेसर S.L. नाहर (शांतिलालजी नाहर) का सहज योग मिल गया। उन्होंने इस कृति को परिष्कृत, परिमार्जित एवं संशोधित करने में अपना समय और श्रम लगाया। प्रोफेसर नाहर द्वारा प्रदत्त कुछ सुझावों ने मेरी लेखनी को सुदृढ़ बनाया। कदम-कदम चलते-चलते लगभग डेढ़ वर्ष में यह प्रयास 'लोगस्स–एक साधना' भाग 1 व भाग 2 के रूप में सफल हो गया।

इसमें लोगस्स साधना के जिन-जिन प्रयोगों को दर्शाया गया है वे अधिकांश प्रयोग महायोगी आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के साहित्य से प्राप्त किये गये हैं और काफी प्रभावी भी पाये गये हैं।

'लोगस्स' अपने भीतर अनंत-अनंत संभावनाएं समेटे हुए है अतः

'लोगस्स—एक साधना'—भाग-1पुस्तक भी पाठक में विकास की अनंत-अनंत संभावनाएं खोजती-सी प्रतीत होगी। सिद्ध भगवन्त अनंत है मेरी वंदना की भाव उर्मियां भी अनंत हैं अतः हृदय से मैं नतमस्तक हूँ 'चतुर्विंशति-स्तव' (अर्हत्-सिद्ध परमात्मा) के प्रति जिसमें अवगाहन कर मुझे बहुत कुछ पाने का सुअवसर मिला है।

गण या गणि के अनंत उपकारों से उपकृत, आचार-निष्ठ, संघ व संघपति के प्रति समर्पित, तत्त्वज्ञान व संस्कार प्रदात्री स्वर्गीया साध्वी श्री सुखदेवांजी एवं स्वर्गीया तपस्विनी साध्वी श्री भत्तूजी के जीवन से मुझे जो मिला उसे कभी नहीं भुलाया जा सकेगा। मुझे सहज ही गौरव की अनुभूति होती है कि गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने जीवन निर्माण के उन अपूर्व क्षणों में मुझे उन कलात्मक हाथों में सौंपा जिससे यह लघुकृति निर्मित हो पाई।

मैं श्रद्धावनत हूँ गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के प्रति जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से सूर्य की तरह मेरे जीवन पथ को आलोकित किया। चंद्रमा की तरह संसार दावानल में विदग्ध को शीतलता प्रदान की। गंगा की तरह पापों का शमन किया। अनंत विस्तृत आकाश की तरह अपनी छाया में शरण दी।

श्रद्धासिक्त प्रणति है आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के पावन पादारविन्दों में जिनकी अतीन्द्रिय चेतना से निःसृत पावन रश्मियों के उजास ने मेरे पथ को प्रशस्त किया है।

मैं प्रणत हूँ आचार-निष्ठा एवं अध्यात्म-निष्ठा के प्रतीक तथा वाणी के अल्प प्रयोग में बहुत कुछ कह देने की क्षमता धारण करने वाले अविचल धृतिधर परम पूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी के चरण कमलों में जिनकी दिव्य दृष्टि और करुणादृष्टि मेरी संयम-साधना और साहित्य-साधना दोनों को आलोकित कर रही है।

पूज्य प्रवर ने व्यस्ततम क्षणों में भी महती कृपा कर कृति का अवलोकन किया और आशीर्वचन प्रदान किया। इससे कृति का प्रत्येक पृष्ठ, पंक्ति और अक्षर गौरवान्वित हुआ है।

नतमस्तक हूँ अहर्निश सारस्वत साधना में संलग्न संघ महानिदेशिका आदरणीया महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के प्रति जिनके वात्सल्य नेत्र हमें सतत प्रोत्साहित करते रहते हैं।

मैं आभारी हूँ आदरणीया मुख्य नियोजिकाजी के प्रति, जिन्होंने सदैव मुझे इस दिशा में उत्साहित रखा।

मैं बहुत-बहुत आभारी हूँ शासन गौरव साध्वीश्री राजीमतिजी की जिनकी पावन प्रेरणा ने मुझे अपने जीवन के विराट लक्ष्य से जुड़े लोगस्स महामंत्र में अभिस्नात करने के लिए प्रेरित किया।

अत्यन्त कृतज्ञ हूँ अग्रगामी साध्वीश्री सरोजकुमारीजी की जिनका पूरा-पूरा सहयोग व मार्गदर्शन मुझे बराबर मिलता रहा। कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ साध्वी श्री चन्द्रलेखाजी, साध्वी श्री प्रभावनाजी एवं साध्वी श्री सोमप्रभाजी के प्रति जिनका व्यक्त-अव्यक्त सतत सहयोग मिलता रहा।

मैं नहीं भूल सकती प्रोफेसर S.L. नाहर को जिन्होंने इस कृति को समृद्ध बनाने में अपना समय लगाया। कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ साध्वी श्री शुभप्रभाजी के प्रति, जिन्होंने इस कृति को सजाने, संवारने एवं समृद्ध बनाने में श्रम लगाया है। प्रूफ संशोधन में महिला मंडल अध्यक्षा, पेटलावद, श्रीमति ललिता भंडारी एवं कन्यामंडल संयोजिका, पेटलावद, सुश्री खुशबू मेहता तथा सुश्री शिल्पा मारु, पेटलावद ने निष्ठा से श्रम और समय लगाया है।

अन्त में मैं उन सब विद्वद् रचनाकारों की हृदय से आभारी हूँ जिनकी साहित्य स्रोतस्विनी में यत्-किञ्चित् अवगाहन कर मुझे लोगस्स को समझने की दिव्य दृष्टि मिली। जो पढ़ा, समझा, अनुभव किया वही संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेस संबंधी दायित्व के निर्वहन में पेटलावद महिला मंडल की मंत्री श्रीमति प्रमिला कासवा ने जो श्रम और सहयोग किया है, उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। आदर्श साहित्य संघ (केशव प्रसाद चतुर्वेदी) ने कृति के टंकण से लेकर प्रकाशन तक के कार्य को शीघ्रताशीघ्र कर मेरे कार्य में सहयोग किया है।

यह कृति पाठक के हृदयाम्बुधि में आनंद की उर्मियों का सृजन करेगी। अस्तित्व बोध के आत्मलक्षी बिंदु से इसके पाठक आत्मा की समता और चित्त की निर्मलता को उत्तरोत्तर विकसित करते रहे। इसी भावना के साथ 'लोगस्स' जो अनंत-अनंत आस्थाओं का केन्द्र है इसके विषय में मेरा स्वकथ्य क्या हो सकता है, केवल नमन...नमन...अन्तहीन नमन।

मैं निरन्तर शील और श्रुत के निर्झर में अभिस्नात होती रहूँ, इन्हीं मंगल भावों के साथ हृदय सम्राट आचार्य श्री महाप्रज्ञजी की निम्नोक्त पंक्तियों से यह स्वकथ्य स्वतथ्य बने, गुरुदेव के इसी आशीर्वाद के साथ–

तुम निरुपद्रव, हम निरुपद्रव, तुम हम सब है आत्मा,
तव जागृत आत्मा से हम सब बन जाएं परमात्मा।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रं ह्रः अंतर-मल धुल जाए ॥
चैत्यपुरुष जग जाए ॥

इंदौर
१७-अगस्त-२०१०

साध्वी पुण्ययशा

चउवीसत्थव (चतुर्विंशतिस्तव)

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥१॥
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिनंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपूज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय मए, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरोग्ग बोहि लाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

अनुक्रम

१.	लोगस्स के संदर्भ में बोधि लाभ की महत्ता	१
२.	समाहिवरमुत्तमं दिंतु-१	१७
३.	समाहिवरमुत्तमं दिंतु-२	३१
४.	चंदेसु निम्मलयरा	३८
५.	आइच्चेसु अहियं पयासयरा	४५
६.	सागरवरगंभीरा	५३
७.	सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु	५८
८.	लोगस्स आध्यात्मिक पदाभिषेक	६७
९.	लोगस्स और कायोत्सर्ग	७२
१०.	लोगस्स और तप	९५
११.	लोगस्स का वर्षीतप	१०९
१२.	ग्रह शांति और तीर्थंकर जप	११३
१३.	चक्र और तीर्थंकर जप	१२३
१४.	लोगस्स कल्प	१३४
१५.	चौबीसी और आचार्य जय	१४०

परिशिष्ट-१

१.	श्री वज्रपंजर स्तोत्र	१५७
२.	किस महीने में कौन-से तीर्थंकर का कौन-सा कल्याणक	१५९

परिशिष्ट-२

	उद्धृत, उल्लिखित, अवलोकित ग्रंथों की तालिका	१६३

१. लोगस्स के संदर्भ में बोधि लाभ की महत्ता

घनीभूत श्रद्धा ही सत्य का साक्षात्कार करा सकती है। भगवान महावीर ने कहा–मोक्ष का सच्चा कारण दर्शन ही है। चारित्र से यदि पाँव फिसल जाये तो घबराओ मत किंतु श्रद्धा के सहारे को कभी मत सरकने दो। सम्यक् दर्शन में वह शक्ति है कि उसकी उपस्थिति में दुर्गति का बंध हो ही नहीं सकता। यदि यह साथ नहीं छोड़े तो चारित्र की प्राप्ति करा ही देता है, इस भव में नहीं तो परभव में।

अर्हत् हमारे आदर्श हैं। उनके जीवन से प्रेरणा पाने के लिए हम उनके गुणों का स्मरण करते हैं। अर्हत् बनने का अर्थात् वीतरागी बनने का संकल्प पुष्ट करते हैं। हमारे भीतर अनंत शक्तियों का खजाना है। उस खजाने को खोजने की आवश्यकता है। जिन्होंने उस खजाने को खोजा है, आत्मसाक्षात्कार किया है, उनके प्रति हमारी वंदना ही हमारा उस दिशा में प्रस्थान है। यही कारण है कि साधक लोगस्स-स्तव को माध्यम बनाकर अर्हत् भगवन्तों से 'बोहिलाभं' (दिंतु) कहता हुआ आत्म-संबोधि की लोकोत्तर भावना अभिव्यक्त करता है।

वस्तुतः एक सच्चा साधक, आत्मार्थी साधक किसी भौतिक सामग्री की नहीं वरन् धर्म जैसे अमूल्य आत्मिक पदार्थ की ही इच्छा करता है। अर्हत् भगवन्तों की स्तुति से सांसारिक सुख संपत्ति व ऐश्वर्य की अभिलाषा करना भगवान की भक्ति नहीं सौदा मात्र है। एक सच्चा साधक ऐसा कभी नहीं कर सकता।

बोधि लाभ की अभिलाषा क्यों?

घनीभूत श्रद्धा ही सत्य का साक्षात्कार करा सकती है। भगवान महावीर ने कहा–"भट्ठेणं चरित्ताओं दसंणं दढ़यरं गहेयव्वं"। अर्थात् चारित्र से पांव फिसल जाये तो घबराओ मत किंतु श्रद्धा के सहारे को कभी मत सरकने दो। सम्यक् दर्शन में वह शक्ति है कि इसकी उपस्थिति में दुर्गति का बंध हो ही नहीं सकता। यदि यह साथ नहीं छोड़े तो चारित्र की प्राप्ति करा ही देता है, इस भव में नहीं

तो परभव में। इसलिए भगवती सूत्र टीकाकार ने कहा है—"मोक्ष का सच्चा कारण दर्शन ही है अतएव ज्ञान की अपेक्षा दर्शन का ही प्रयत्न करना चाहिए और दर्शन के बाद ज्ञान के विस्तार का प्रयत्न होना चाहिए। ज्ञान-दर्शन के सम्यक् होने पर ही चारित्र सम्यक् चारित्र कहा जाता है।"[1]

भव्यजीव सबसे पहले कृष्ण पक्षी से शुक्ल पक्षी बनते हैं उसके बाद सम्यक्त्वी, परित संसारी, सुलभ बोधि, आराधक*, चरमशरीरी होकर मुक्त हो जाते हैं।

साधक अर्हत् स्तुति के माध्यम से अपनी आत्म-शक्तियों का जागरण करता है। सभी धर्मशास्त्रों में ऐसे सहस्रों आख्यान या दृष्टान्त मिलते हैं। जहाँ अडोल श्रद्धा के बल पर व्यक्ति ने असंभव या महादुष्कर कार्य कर लिए अथवा अनिष्टकारी कार्यों के फल से मुक्ति पा ली। वास्तव में सिद्धियों के स्वस्तिक रचाने वाली महाशक्ति का नाम ही है—श्रद्धा। कितनी सच्चाई है निम्नोक्त पंक्तियों में—

कौन कहता है कि श्रद्धा के जुबां होती है।
यह तो वो चीज है जो आँखों से बयां होती है॥

इतिहास विश्रुत कुछ दृष्टान्त जो प्रेरक और श्रद्धा बल को बलवत्तर बनाने वाले हैं, यथा—

- भगवान के प्रति दृढ़ विश्वास से भक्त प्रहलाद को धरती के कण-कण में भगवान के दर्शन होने लगे और हिरण्यकश्यप की चुनौती पर स्तंभ में से भगवान विष्णु नृसिंहावतार के रूप में प्रकट हो गये।
- बाल भक्त ध्रुव ने अविचल भक्ति और तपस्या से भगवान का स्मरण किया और उसने नक्षत्र लोक में शाश्वत ध्रुवतारे का स्थान पा लिया।
- तीर्थंकर महावीर के दर्शनार्थ जाते मार्ग में संकट उत्पन्न होने पर सेठ सुदर्शन ने जब भगवान का स्मरण किया तो अर्जुनमाली का खड्ग सहित हाथ ऊँचा का ऊँचा रह गया और वह कोई घातक प्रहार नहीं कर सका।
- महासती सीता ने जब अपने शील पर आस्था संकट देखा तो वह अग्नि में प्रवेश कर गई और अग्नि के स्थान पर जलधारा प्रवाहित हो गई।
- महासती सुभद्रा ने कच्चे धागे में छलनी बांधकर कुएं का पानी खींचा व उस पानी को छांटकर चम्पानगरी के द्वार मात्र आस्था के बल पर खोल दिये।

---

* जघन्य एक तथा उत्कृष्ट १५ भवों के भीतर मोक्ष जाने वाला

- राजा हर्षदेव ने मानतुंग आचार्य को ४८ लोहे की बेड़ियों वाली शृंखला से जकड़ दिया व कोठरी में बंद कर ताले लगा दिये। उस समय मानतुंग सूरि ने अपने आराध्यदेव भगवान ऋषभ (प्रथम तीर्थंकर) की स्तुति प्रारंभ की और ज्यों-ज्यों वे एक-एक पद बोलते गये एक-एक कड़ी टूटती गई और पूरी स्तुति समाप्त होते ही सारी कड़ियां टूट गईं, वे स्वतंत्र होकर बाहर आ गये। वह पद्य रचना भक्तामर के नाम से वर्तमान में भी उपलब्ध है।

इसी प्रकार श्रावक शोभजी की बेड़ियों का टूटना, साध्वी रूपांजी का खोड़ा टूटना, साध्वीप्रमुखा नवलांजी का द्वार खुलना, अंगारों की वर्षा का थमना आदि अनेकों घटना प्रसंग आस्था की पुष्टि के ज्वलंत प्रमाण हैं।

श्रद्धा और आस्था का फलितार्थ पाने के लिए एक ही तथ्य ध्यान में रखना होता है कि श्रद्धा अविचल हो, अडोल हो, निष्कंप हो, निर्संशय हो। ऐसा तभी हो सकता है जब श्रद्धा करने वाला व्यक्ति निर्मल चित्त का सहज-सरल स्वभाव वाला हो।

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रद्धा के बल पर व्यक्ति भयंकर कष्टों को पारकर अथवा राग-द्वेष के बंधनों से मुक्त होकर शांति, समाधि व सुखों की प्राप्ति कर सकता है। परन्तु वह श्रद्धा परम दुर्लभ है इसलिए आत्मार्थी साधक बोधि लाभ की अभिलाषा करता है। जैसा कि उत्तराध्ययन में कहा गया है[२]—

चत्तारि परमंगाणि, दुल्हाणी य जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरयं॥

किसी प्राणी के लिए चार स्थाई महत्त्व की बातों की प्राप्ति दुर्लभ है—

१. मनुष्यता
२. अध्यात्म वाणी का श्रवण
३. श्रुत में श्रद्धा
४. संयम साधना में शक्ति का नियोजन

बोधिलाभ की स्थिरता के लिए कुछ प्रश्न मननीय हैं जैसे—बोधि क्या है? बोधि की महत्ता क्या है? बोधि कहाँ है? बोधि प्राप्ति के साधक-बाधक तत्त्व कौन-कौन से हैं? बोधि को स्थिर रखने में कौन-कौन से उपाय हैं? तथा जीवन में बोधि का इतना महत्त्व क्यों है? इत्यादि।

बोधि क्या है?

मुख्यतः बोधि (सम्यक्त्व) के दो प्रकार हैं—

१. निश्चय सम्यक्त्व
२. व्यवहारिक सम्यक्त्व

आत्मा का बोध होना निश्चय सम्यक्त्व है और तत्त्वों का बोध होना व्यवहारिक सम्यक्त्व है।[३]

यही तथ्य आचार्य शंकर की वाणी में उद्‌भाषित हुआ है–

मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः।
दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रह हैतुकम् ॥

अर्थात् मनुष्य जीवन, मुमुक्षा भाव एवं महापुरुषों की सन्निधि–ये तीनों दुर्लभ हैं, दैविक अनुग्रह से ही इनकी उपलब्धि संभव है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने भक्त हनुमान से पूछा–हनुमान! तेरा और मेरा क्या संबंध है? हनुमान ने अनेकान्त की भाषा में उत्तर देते हुए कहा–

देहभावेन दासोस्मि, जीव भावे त्वदंशकः।
आत्म भावे त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः ॥

देह दृष्टि से यह सर्व विदित है कि आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ। जीव दृष्टि से आप पूर्ण हैं और मैं अपूर्ण हूँ, आप शुद्ध हैं मैं अशुद्ध हूँ, आप निर्मल हैं मैं समल हूँ।

आत्म दृष्टि से जो आप हैं वह मैं हूँ, जो स्वरूप आपका है वही मेरा है। स्वरूप की दृष्टि से आपमें और मेरे में कोई अन्तर नहीं है।

हनुमान के इस पारदर्शी चिंतन से श्रीराम बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए। सचमुच ऐसा चिंतन सम्यक् दृष्टि संपन्नता का प्रतीक है। यह सम्यक् दृष्टि ही बोधि प्राप्ति का बीज है। अभव्य जीव अनंत बार सत्तरह पाप स्थानों का वर्जन करता हुआ श्रमणोचित्त उग्र क्रिया के प्रभाव से नो ग्रैवेयक स्वर्ग में अहमिन्द्र बन जाता है। वहां उसमें लेश्या भी शुक्ल होती है फिर भी एक मिथ्यात्व के शल्य से वह अनंत संसारी ही रहता है इसलिए मोक्षार्थी को मिथ्यात्व का शल्य निकालना परम आवश्यक है। मिथ्यात्व के एक बार हट जाने और सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने पर चारित्र आता ही है भले ही वह भवान्तर में आए। इसीलिए आचार्य तुलसी की हंस मनीषा ने संगान किया–

ज्ञान से निज को निहारें, दृष्टि से निज को निखारे।
आचरण की उर्वरा में लक्ष्य-तरुवर लहलहाएँ।
भाव भीनी वंदना भगवान चरणों में चढ़ाए ॥[७]

बोधि की महत्ता

धर्म का मूल सम्यक् दर्शन है।[४] जो सम्यक् दर्शन से रहित है उन्हें आत्मोप-

लब्धि नहीं होती, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती।[८] आराधना से रहित होने के कारण वे संसार में ही भटकते रहते हैं जिस प्रकार मूल के नष्ट हो जाने पर उसके परिवार–स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल की वृद्धि नहीं होती। यही कारण है कि जिनेन्द्र भगवान ने दर्शन को धर्म का मूल[९] और मोक्ष महल का प्रथम सोपान बताया है।[८] भगवान महावीर ने **'सद्धा परम दुल्लहा'** कहकर उसकी प्राप्ति को परम दुर्लभ बताया है।[८] जिस प्रकार लोक में जीव रहित शरीर को शव कहते हैं वैसे ही सम्यक् दर्शन रहित पुरुष चल शव है। शव लोक में अपूज्य है और सम्यक् दर्शन रहित पुरुष लोकोत्तर मार्ग में अपूज्य होता है। मुनि व श्रावक धर्मों में सम्यक्त्व की ही विशेषता है।[१०] जिस प्रकार कमलिनी स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होती उसी प्रकार सम्यक् दृष्टि जीव भी स्वभाव से ही विषय कषायों से लिप्त नहीं होता।[११] श्रद्धाहीन व्यक्ति को कभी शांति समाधि नहीं मिल सकती।[१२] इसके विपरीत श्रद्धा हमें राग शक्ति से मुक्त कर सकती है।[१३] श्रद्धा/बोधि सुलभ किसके लिए होती है उस रहस्य को उजागर करते हुए भगवान महावीर ने कहा–

समत्तदंसणरत्ता अनियाणा सुक्कलेश मोगाढ़ा।
इय जे मरन्ति जीवा, तेसिं सुल्लहा भवे बोहि ॥[१४]

अर्थात् जो सम्यक् दर्शन में अनुरक्त, निदान (फल कामना से रहित) रहित और शुक्ल लेश्या में प्रतिष्ठित है–ऐसी स्थिति में जो जीव मरते हैं उनके लिए बोधि सुलभ है। इस प्रकार जिन्होंने सर्वसिद्धि करने वाले सम्यक्त्व को स्वप्न में भी मलिन नहीं किया है, वे ही धन्य हैं, वे ही कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं और वे ही पंडित हैं।[१५] उपरोक्त सारे विवेचन का सार निम्नोक्त पंक्तियों में समझा जा सकता है–

किं बहुना भविएणं जे सिद्धा नरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥[१६]

अधिक कहने से क्या लाभ है? इतना समझ लेना कि आज तक जितने जीव सिद्ध हुए हैं और भविष्यकाल में होंगे वह सब सम्यक्-दर्शन का ही माहात्म्य हैं। यदि सम्यक् श्रद्धा रूप एक अंक है तो आगे जितने भी शून्य लगेंगे उतनी ही उसकी मूल्यवत्ता बढ़ती जायेगी।

बोधि कहाँ है?

बोधि सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र का दिशाबोध है। वह साधने भी है और गंतव्य भी है, वह साधना भी है और सिद्धि भी है, वह पूर्णता भी

है और रिक्तता भी है। यदि एक वाक्य में कहा जाये तो बोधि आत्मा के अस्तित्व का संबोध है।

प्राग् ऐतिहासिक काल की घटना है प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ के समीप एक दिन उनके अठ्ठानवें पुत्र आए और प्रार्थना की कि "भन्ते! भरत ने हम सबसे राज्य छीन लिए हैं। अपना राज्य पाने की अभिलाषा से हम आपकी शरण में आए हैं।"

भगवान ऋषभ ने कहा–"मैं तुम्हें यह राज्य तो नहीं दे सकता किंतु ऐसा राज्य दे सकता हूँ जिसे कोई छीन न सके।"

पुत्रों ने पूछा–"वह राज्य कौन-सा है?"

भगवान ने कहा–"वह राज्य है आत्मस्वरूप की उपलब्धि"।

पुत्रों ने पुनश्च प्रश्न किया–"वह कैसे प्राप्त हो सकती है?"

तब भगवान ने समाधान की भाषा में कहा–

संबुज्झह किं न बुज्झइ, संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।
णो हूवणमंति राइओ, णो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥[१७]

संबोधि को प्राप्त करो। तुम संबोधि को प्राप्त क्यों नहीं कर रहे हो? बीती रात लौटकर नहीं आती। यह मनुष्य जन्म बार-बार सुलभ नहीं है। हम जो पाना चाहते हैं, हमारे पास है, बाहर से हमें कुछ भी नहीं लेना है।

भगवान से प्रतिबोध पा वे सभी प्रवर्जित हो संबोधि को प्राप्त कर उस अनुपम आत्म राज्य को उपलब्ध हो गये। सारांश में कहा जा सकता है कि यह संबोध कहीं बाहर से नहीं आता, जो भीतर सुषुप्त था वह जागृत हो जाता है और जब स्व-पर का बोध जागृत हो जाता है तब व्यक्ति का जो रूपान्तरण अनादि काल से घटित नहीं हुआ वह रूपान्तरण घटित होने लग जाता है। अध्यात्म योगी आचार्य श्री तुलसी ने भगवान महावीर की वाणी के आधार पर इस रहस्य को निम्नोक्त पंक्तियों में दर्शाया है[१८]–

जिसने शब्दादिक विषयों से
भिन्न स्वयं को जान लिया
उसने मूर्च्छा संग त्याग
सविवेक भेद–विज्ञान किया
वह आत्मवान–आत्मा को उसने पाया है
वह ज्ञानवान–उसने चैतन्य जगाया है
वह वेदवान–शास्त्रों का सही निचोड़ किया

वह धर्मवान–समता से नाता जोड़ लिया
वह ब्रह्मवान–उसने जग से मन मोड़ लिया
वह परम तत्त्व का संतानी
आयारो की अर्हत् वाणी ॥

बोधि प्राप्ति के निमित्त कारण[१९]

१. अनुकंपा
२. अकाम निर्जरा
३. बाल तप
४. दान
५. विनय
६. विभंग अज्ञान
७. संयोग-विप्रयोग
८. व्यसन-कष्ट
९. उत्सव
१०. ऋद्धि,
११. सत्कार

बोधि प्राप्ति के उपाय[२०]

१. दृष्ट (देखने से)–श्रेयांस ने भगवान ऋषभ के दर्शन से बोधि प्राप्त की।
२. श्रुत (सुनने से)–आनंद और कामदेव ने सुनकर बोधि प्राप्त की।
३. अनुभूत (अनुभूति से)–वल्कलचीरी को पिता के उपकरणों से बोधि प्राप्त हुई।
४. क्षय (कर्मों के क्षय से)–चंडकौशिक को कर्मों के क्षय से बोधि प्राप्त हुई।
५. उपशम (कर्मों के उपशम से)–अंगऋषि को कर्मों के उपशम से बोधि प्राप्त हुई।

बोधि (सम्यक्त्व) के लक्षण[२१]

१. शम–क्रोध आदि कषायों की शांति।
२. संवेग–मोक्ष की अभिलाषा।
३. निर्वेद–संसार से विरक्ति।
४. आस्तिक्य–आत्मा कर्म आदि में विश्वास।
५. अनुकंपा–प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव।

उपरोक्त इन्हीं तत्त्वों को कर्मबंध और मुक्ति की प्रक्रिया में निम्न प्रकार से उल्लेखित किया गया है[२२]–

१. भेद विज्ञान—जड़-चेतन की भिन्नता का बोध।
२. आत्मौपम्य बुद्धि—सबको आत्मतुल्य समझना।
३. आग्रह की अल्पता—सत्य के प्रति सहज दृष्टि।
४. क्रोध आदि कषायों की अल्पता—समभाव।
५. पापभीरुता—पापात्मक प्रवृत्तियों में सतत् जागरूकता।

बोधि प्राप्ति के बाधक तत्त्व (सम्यक्त्व के दूषण)

जैन श्रमणोपासक के लिए श्रद्धा के पांच दोष बतलाए गए हैं।[२३]

१. शंका—अपने आराध्य, लक्ष्य या तत्त्व के प्रति संशय।
२. कांक्षा—बाह्याडम्बर देखकर अपने इष्ट या धर्म तत्त्व को छोड़ अन्य के प्रति आकांक्षा।
३. विचिकित्सा—क्रिया, साधना या ध्यान, स्मरण के फल में संदेह।
४. परपाषण्ड प्रशंसा—पराये इष्ट तत्त्व या लक्ष्य की प्रशंसा अर्थात् मिथ्यादृष्टि, व्रतभ्रष्ट पुरुषों की प्रशंसा।
५. परपाषण्ड परिचय—पराये इष्ट, तत्त्व अथवा लक्ष्य के प्रति प्रगाढ़ संसर्ग, स्नेह या राग परिचय अर्थात् मिथ्यादृष्टि, व्रतभ्रष्ट पुरुषों का परिचय।

बोधि प्राप्ति के साधक तत्त्व (सम्यक्त्व के पांच भूषण)[२४]

१. स्थैर्य—धर्म में स्थिर रहना।
२. प्रभावना—धर्म की महिमा बढ़ाना।
३. भक्ति—भक्ति करना।
४. कौशल—धर्म की जानकारी प्राप्त करना।
५. तीर्थसेवा—साधु संघ की उपासना।

बोधि को स्थिर रखने हेतु निम्नोक्त सिद्धान्तों को जानना जरूरी है।

१. आत्मा है।
२. आत्मा द्रव्य रूप से नित्य है।
३. आत्मा अपने कर्मों की कर्ता है।
४. आत्मा अपने कृत कर्मों को भोगता है।
५. आत्मा कर्ममल से मुक्त होता है।

बोधि दुर्लभ भावना का चिंतन भी बोधि स्थिरता का महान हेतु है।

बोधि दुर्लभ भावना

मनुष्य जन्म दुर्लभ है और बोधि उससे अधिक दुर्लभ है। स्वयं का बोध होना बोधि है। जीवन में सब कुछ पाकर भी जिसने बोधि नहीं पाई उसने कुछ नहीं पाया और बोधि पाकर जिसने कुछ भी नहीं पाया उसने सब कुछ पा लिया। मरने के बाद सब कुछ छूट जाता है, वह हमारी अपनी सम्पत्ति नहीं है। संबोधि अपनी संपत्ति है, उसे खोजना है। जन्म के पूर्व और मरने के बाद भी जिसका अस्तित्व अखण्ड रहता है, उसकी खोज में निकलना बोधि भावना का अभिप्राय है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने भावना के अभ्यास की एक सहज सरल विधि बताई है। भावना का अभ्यास निम्न निर्दिष्ट प्रक्रिया से करना इष्ट सिद्धि में सहायक हो सकता है–

विधि

साधक पद्मासन आदि किसी भी आसन में स्थिरता पूर्वक बैठ जाए, पहले श्वास को शिथिल करें। पांच मिनट तक उसे शिथिल करने की सूचना देते जाएं। जब श्वास शिथिल हो जाए तब उपशम आदि पर मन केन्द्रित करें। इस प्रकार निरन्तर आधा घंटा तक अभ्यास करने से पुराने संस्कार विलिन हो जाते हैं और नये संस्कारों का निर्माण होता है।

सम्यक् दर्शन की दुर्लभता का चिंतन करना एवं श्री ऋषभदेव भगवान के अठ्ठानवें पुत्रों की तरह सम्यक्त्व का महत्त्व समझकर वैराग्यवान बनना और संयम लेना ही इस भावना का उद्देश्य है।

बोधि के लक्षण संवेग[२५]/निर्वेद[२६] के परिणाम

१. अनुत्तर धर्म श्रद्धा की प्राप्ति।
२. अनुत्तर धर्म श्रद्धा से तीव्र संवेग की प्राप्ति।
३. तीव्रतम क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय।
४. मिथ्यात्व कर्म का अपुनर्बन्ध।
५. मिथ्यात्व विशुद्धि।
६. उसी जन्म में या तीसरे जन्म में मुक्ति (क्षायिक सम्यक्त्व बोधि की अपेक्षा)।
७. काम भोगों के प्रति अनासक्त भाव।
८. इन्द्रियों के विषय में विरक्ति।
९. आरंभ परित्याग।
१०. संसार मार्ग का विच्छेद और मोक्ष मार्ग का स्वीकरण।

बोधि की प्राप्ति कब?

बोधि प्राप्ति का आन्तरिक कारण अनंतानुबंधी (तीव्रतम) क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व-मोहनीय, मिथ्यात्व-मोहनीय और सम्यक्त्व मिथ्यात्व मोहनीय—मोह कर्म की इन सात प्रकृतियों का उपशम होने से उपशम बोधि, क्षय होने से क्षायिक बोधि और कुछ का उपशम तथा कुछ का क्षय होने से क्षयोपशम बोधि की प्राप्ति होती है।

इन सात प्रकृतियों का उपशम आदि होने का बाह्य कारण सामान्यतः द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है। उसमें द्रव्य में तो साक्षात् तीर्थंकर को देखना आदि प्रधान है, क्षेत्र में समवसरणादिक प्रधान है, काल में अर्द्धपुद्गल परावर्तन संसार भ्रमण शेष रहे तब तथा भाव से यथाप्रवृत्ति करण आदि की प्रक्रिया है।*

जीव पहले तो अकाम निर्जरा के द्वारा ६९ कोटाकोटि सागरोपम की मोहनीय कर्म की स्थिति को तोड़ता है उसके बाद सम्यक्त्व प्राप्त करता है। सम्यक्त्व प्राप्ति के समय भी उसके एक कोड़ाकोड़ सागरोपम लगभग स्थिति के कर्म होते हैं।

हृदय चक्र और मनः चक्र

एक चक्र सीधी रेखा में है और एक चक्र हृदय के सामने है। एक का नाम हृदय चक्र और दूसरे का नाम है अनाहत चक्र। आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के अनुसार अनाहत चक्र (आनंद-केन्द्र) और मनः चक्र—दोनों एक ही हैं।[२५] उन्होंने लिखा है—'घट-घट में राम'—लोग जो यह बात कहते हैं यह वही घट है। मैंने स्वयं इस पर ध्यान किया है और यह अनुभव भी किया है कि कषाय शांति के लिए यह सबसे अच्छा स्थान है।[२६] आनंद-केन्द्र (हृदय का परिपार्श्व) बहुत चामत्कारिक है। यहां से प्राप्त होने वाला आनंद शरीर के रसायनों और चेतना के योग से निष्पन्न होता है अतएव इस केन्द्र की सक्रियता से निम्न गुण प्रकट होते हैं—

१. सहिष्णुता का विकास
२. परिस्थितियों को झेलने की क्षमता का विकास
३. दीर्घ साधना के पश्चात् हर्ष और शोक से परे एक नई चेतना (आनंद) की जागृति।

आचार्य हेमचन्द्र ने इस चक्र की विशेषता का उल्लेख करते हुए लिखा है—

ततोऽविद्या विलीयन्ते, विषयेच्छा विनश्यति ।
विकल्पा विनिवर्तन्ते, ज्ञानमंतर्विजृम्भते ॥

---

* यथाप्रवृत्तिकरण आदि की विशेष जानकारी के लिए देखें, "स्वागत करें उजालो का" पृ. १०२ से १०४।

अर्थात् आनंद-केन्द्र पर श्वास का संयम और मन को केन्द्रित करने का फल है—

- अविद्या का नाश
- निर्विकल्प अवस्था की प्राप्ति
- विषयेच्छा का परिष्कार
- अन्तरज्ञान का उच्छवास

पारदर्शी प्रज्ञा के धनी आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने एक बहुत महत्त्व की बात कही है इस चक्र के विषय में, जिसका सार यह है—"आगमों के अनुसार आत्मा के आठ प्रदेश ऐसे हैं, जो प्रकट रहते हैं, अभिव्यक्त रहते हैं, उन पर कोई आवरण नहीं आता। जिन्हें हम मनः चक्र की आठ पंखुड़ियां कहते हैं वे ये ही आठ प्रदेश हैं जिन पर चेतना के पहुँचने से सम्यक्त्व का विकास या जागरण का विकास होता है।[२७] उसके पहले जागृति का विकास नहीं होता। यह स्थान नाभि से १२ अंगुल ऊपर अनाहत चक्र (आनंद-केन्द्र) के नाम से विश्रुत है। ग्रंथि, चक्र या कमल—ये तीनों पर्यायवाची हैं।

हृदयचक्र से भिन्न जो मन का चक्र, मन का कमल या मन की ग्रंथि (अनंतानुबंधी राग-द्वेष की ग्रंथि) है उसकी कर्णिका में जाकर अपनी सारी चेतना को समेटकर हमारी चिंतन की रश्मियां, हमारी परिणाम धारा और हमारी भावधारा जो सारे शरीर में प्रवाहित हो रही है, उसे संकुचित कर समेटकर जब तक मनः कर्णिका पर केन्द्रित नहीं कर देते हैं तब तक उस ग्रंथि का भेद नहीं होता है और उस ग्रंथि का भेदन हुए बिना जागृति/सम्यक् दर्शन या सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह उसकी प्रक्रिया है। अर्थात् आनंद-केन्द्र पर ध्यान राग-द्वेष की ग्रंथि को तोड़ने में सहयोगी है।[२८] जिसका परिणाम—

- आत्मा और शरीर का भेदज्ञान
- हमारे अस्तित्व का बोध
- हमारी शक्ति का बोध
- हमारे अन्तर्जगत् की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का बोध

ये सारी बातें हमारे सामने स्पष्ट हो जायेंगी। फिर मूर्च्छा की स्थिति से हम जागृति की स्थिति में चले जायेंगे। ऐसा हमारे जीवन में यह पहला क्षण आता है यानि इस अपूर्वकरण की स्थिति का अनुभव कर हम अन्तर की यात्रा, जागृति की यात्रा को शुरू कर देते हैं और धीरे-धीरे वीतरागता तक पहुँच सकते हैं।

तीर्थंकर और बोधि लाभ

सभी तीर्थंकरों की बोधि प्राप्ति के बाद के भवों की संख्या निम्न प्रकार से हैं[२९]—

भगवान ऋषभ–१३ भव
भगवान शांति–१२ भव
भगवान मुनिसुव्रत–६ (३) भव
भगवान अरिष्टनेमि–६ भव
भगवान पार्श्व–१० भव
भगवान महावीर–२७ भव
शेष सभी तीर्थंकरों के–३ भव

तीर्थंकरों के बोधि प्राप्ति का कारण

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जीव मुक्ति से पूर्व तेरहवें भव में महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठित नगर में धन्ना सार्थवाह के रूप में उत्पन्न हुआ। उस भव में साधुओं को घृत दान देते हुए बोधि (सम्यक्त्व) को प्राप्त हुआ।

दूसरे तीर्थंकर भगवान श्री अजितनाथ ने अपने पूर्व जन्म में घोर तपस्या की थी। वहाँ विमल वाहन राजा के भव में अरिमर्दन आचार्य का उपदेश सुनकर बोधि की प्राप्ति हुई। उसी भव में दीक्षा ली तथा महान कर्म निर्जरा कर तीर्थंकर गोत्र का बंध किया।

तीसरे तीर्थंकर भगवान श्री संभवनाथ ने अपने पूर्व जन्म में विपुल वाहन राजा के भव में धर्म दलाली व शुद्ध दान (सुपात्र दान) से बोधि की प्राप्ति की। उसी भव में तीर्थंकर बंध के २० बोलों की आराधना कर तीर्थंकर गोत्र का बंध किया।

पांचवें तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ ने पुरुष सिंह राजकुमार के भव में विनय नंदन मुनि के उपदेश से, २१वें तीर्थंकर नमिनाथ ने संसार की नश्वरता का चिंतन करते हुए, २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत ने नंदन मुनि के प्रवचन से तथा भगवान महावीर ने मोक्ष प्राप्ति से पूर्व २७वें भव में सुपात्र दान से बोधि की प्राप्ति की।

बोधि वृक्ष और बोधि प्राप्ति[३०]

बोधि वृक्ष बहुत विश्रुत है। अश्वत्थ संज्ञा से प्रसिद्ध यह वृक्ष चिकित्सा दृष्टि से विवेचित है। साधना की दृष्टि से इसका निरूपण महत्त्वपूर्ण है। इसके नीचे बैठने वाले व्यक्ति के श्वास रोग दूर होता है यह चिकित्सा सम्मत्त है। इसके नीचे बैठने वाले व्यक्ति के बोधि विकसित होती है, अन्तर्दृष्टि जागती है यह साधना सम्मत्त है। इसलिए प्राचीन साहित्य में चैत्य वृक्ष के रूप में इसकी प्रतिष्ठा हुई है।

लोगस्स के संदर्भ में बोधि लाभ की महत्ता

नंदी सूत्रकार श्री देववाचक आचार्य ने संघ स्तुति करते हुए सम्यक् दर्शन को सम्यक् दर्शन रूप विशुद्ध मार्ग वाला[३१], संयम का परिकर–रक्षक[३२], सम्यक्त्व रूप प्रभा वाला निर्मलचन्द्र[३३] और सुमेरुपर्वत की दृढ़ वज्रमय उत्तम और बहुत गहरी आधारशिला नींव[३४] रूप माना है जिस पर कि चारित्र तपादि रूप महान पर्वाधिराज सुदर्शन टिक रहा है।

बोधि का संबंध आरोग्य और समाधि से संपृक्त होने के कारण लोगस्स में 'आरोग्ग बोहिलाभं समाहिवर मुत्तमं दिंतु' कहकर युगपत् इस त्रिवेणी को प्राप्त करने की भावना व्यक्त की गई है।

बोधि लाभ के संदर्भ में लोगस्स की अर्थात्मा एवं स्वरूप चिंतन पर जप और ध्यान की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। इस साधना से संकल्प शक्ति और मन की शक्ति विकसित होती है। सुप्त शक्तियां भी जागृत होने लगती हैं। अतः इस स्तव का जप उर्जस्विता को बढ़ाता है। इस प्रकार लोगस्स के प्रयोग की दो दिशाएं हो जाती हैं–एक सिद्धि प्राप्त करने की और दूसरी व्यक्ति के आन्तरिक मनोदशा के परिवर्तन की। शरीर की तैजस् शक्ति का विकास होने पर वचन सिद्धि, रोग-निवारण सिद्धि और इस प्रकार की अनेक सिद्धियां प्राप्त होती हैं जो बाह्य लौकिक कष्टों का निवारण करती हैं तथा सहज रूप से भौतिक सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं। लोकोत्तर मार्ग में यह साधना व्यक्ति को अन्तर्मुखी होने और कषायों को अल्प करने हेतु अन्तःप्रेरणा प्रेरित करती हैं। कषायों के अल्पीकरण हेतु लोगस्स के अनेक विशिष्ट प्रयोग भी हैं जिनका अभ्यास अपेक्षित है।

आचारांग सूत्र में विवर्णित "समत्त्वदंशी न करेइ पावं"[३५] सम्यक् दृष्टिकोण वाला व्यक्ति पाप कर्म नहीं करता। इसका तात्पर्य यह है कि जिसका दर्शन सम्यक् हो गया वह विपाक को इस प्रकार भोगता है कि नए सिरे से पाप कर्म का बंध न हो तीव्र, प्रगाढ़ तथा चिकने कर्मों का बंध न हो।

जिस प्रकार चक्रवर्तीत्व की दृष्टि से देखें तो भरत और ब्रह्मदत्त दोनों चक्रवर्ती थे, छह खण्ड के राज्याधिकारी थे। दोनों के पास प्रचुर ऐश्वर्य, नौ निधान और चौदह रत्न थे। इस दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं था परंतु शुभ कर्म के विपाक को भोगने में अन्तर था। भरत चक्रवर्ती उसको अनासक्ति के साथ भोग रहा था और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आसक्ति के साथ भोग रहा था। जिसका परिणाम भरत कर्म मुक्त हो गये और ब्रह्मदत्त संसार के जन्म-मरण के कीचड़ में फंस गये। यह अन्तर क्यों? कारण स्पष्ट है कि भरत चक्रवर्ती के पास सम्यक् दर्शन था इसलिए उसने शुभ कर्म के उदय को अनासक्ति से भोगा और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पास सम्यक् दर्शन का अभाव था इसलिए उसने शुभ कर्म के विपाक को

आसक्ति से भोगा। श्री मज्जयाचार्य की आराधना के बोल इसी तथ्य की स्मृति कराते हैं–

पुण्यपाप पूर्व कृत, सुख दुःख ना कारण रै ।
पिण अन्य जन नहीं, इम करै विचारण रै ॥
भावै भावना ॥[१५]

निष्कर्ष

अर्हत् सर्वोपरि श्लाका पुरुष हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के क्षेत्र में उनकी तुलना में कोई संसारी प्राणी नहीं आ सकता। इसलिए उनको लोकोत्तम कहा गया है। ऐसे लोकोत्तम अर्हतों का पुरुषार्थ अपनी शांति (निर्वाण) के लिए भी होता है और संसार की शांति के लिए भी होता है। वे सहज रूप से परम कारूणिक होते हैं। उनकी करुणा में सबके कल्याण का या उत्कृष्ट विकास का भाव निहित है। वे सबको निःश्रेयस के पथ पर अग्रसर करते हैं। सबका निर्वाण उन्हें अभिष्ट है। इसलिए कहा गया है–

शमोद्भुतोद्भुतं रूपं, सर्वात्मसु कृपाद्भुता ।
सर्वाद्भुतनिधि, तुभ्यं भगवते नमः ॥

प्रभो! तुम्हारी शांति अद्भुत है, अद्भुत है तुम्हारा रूप, सब जीवों के प्रति तुम्हारी कृपा अद्भुत है, तुम सब अद्भुतों की निधि के ईश हो, तुम्हें नमस्कार हो।

ऐसे वीतराग अर्हतों की शरण क्या क्या नहीं कर सकती?

- वह सद्ज्ञान की प्राप्ति करवाती है।
- दुर्गति का हरण करती है।
- मिथ्या वासनाओं का नाश करती है।
- धार्मिक मनोवृत्तियों को उत्पन्न करती है।
- मोक्ष की आकांक्षा जगाती है और पार्थिव जगत् के प्रति विरक्ति पैदा करती है।
- राग-द्वेष आदि विकारों का शमन करती है।
- सच्ची राह पर चलने का साहस प्रदान करती है।
- गलत व भ्रामक मार्ग में नहीं जाने देती।
- आत्म-विश्वास की पुष्टि करती है।
- चित्त के प्रदूषण को समाप्त करती है।

संसार में उस व्यक्ति को महान माना जाता है जो सबका सुख, स्वास्थ्य और कल्याण चाहता है। संसारी प्राणी को ऐसी चाह जगानी पड़ती है जबकि

तीर्थंकरों की यह नियति होती है कि वे सब प्राणियों के आत्म सुख, आत्मिक स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए ही प्रवचन करते हैं। जो उनके प्रवचन को सुनते हैं उनकी वाणी पर श्रद्धा करते हैं और उनके अनुरूप अपने जीवन को ऊँचाई तक ले जाने में सफल हो जाते हैं, उनके सारे दुःख क्षीण हो जाते हैं। वे शाश्वत शांति की छाया में आत्मलीन हो जाते हैं। यही कारण है जिनदास चूर्णि में अर्हत् धर्म की उपलब्धि को बोधि कहा है।[३७]

अर्हत् दर्शन में साधक की हर प्रवृत्ति के पीछे निर्जरा का दृष्टिकोण रहा है। जितनी निर्जरा उतनी उज्ज्वलता। लोगस्स के द्वारा निर्जरा के उच्चतम शिखर पर आरोहण संभव है। क्योंकि विधिवत् किया गया कोई भी आध्यात्मिक अनुष्ठान सात-आठ कर्मों को शिथिल करता है। सब कर्मों का नाश करने वाले अर्हत् व सिद्ध स्वयं इस स्तव में समाविष्ट हैं जिनकी स्तुति की अभिनव प्राप्ति—'दर्शन विशुद्धि' आगम में बतलाई गई है। निस्संदेह यह चतुर्विंशति स्तव शक्ति का धाम है। इसके हर पद में समाया हुआ है आनंद, महाआनंद। यह कल्पतरु है, देव, गुरु, धर्म-तत्त्व का महत्त्व बताता है, सत्य दर्शाता है, ध्येय का ध्यान सिखाता है, ज्ञेय का ज्ञान कराता है और हेय का भान कराता है। अरिहंत दाता और ज्ञाता है, सिद्ध ज्ञेय एवं ध्येय है। 'चमत्कार को नमस्कार'—यह लोकोक्ति सत्य है पर नमस्कार में चमत्कार यह लोकोत्तर सत्य है। अतः "उट्ठिए णो पमायए"[३८]—इस आर्ष वाक्य का शंखनाद सब दिशाओं में अनुगूंजित रहे और सुषुप्ति को तोड़ते रहें, जिसका परिणाम होगा--अस्तित्त्व-बोध, तत्त्व-बोध, लक्ष्य-बोध, सामर्थ्य-बोध, कर्त्तव्य-बोध, यथार्थ-बोध और परमार्थ-बोध की प्राप्ति। यदि सुमेरु पर्वत की नींव एक हजार योजन नहीं होती तो वह शाश्वत नहीं होता। तात्पर्य यह है कि आधारशिला मजबूत चाहिए। धर्म में भी सम्यक् दर्शन रूप आधार को पहले से ही पक्का बना लेना आवश्यक है। आचार्य श्री तुलसी की अनुभूत वाणी इस दिशा में हमारे भीतर सर्च लाइट का कार्य करती रहें, इन्हीं मंगल भावों के साथ[३९]—

सत्य में आस्था अचल हो, चित्त संशय से न चल हो ।
सिद्ध कर आत्मानुशासन, विजय का संगान गाएं ।
भावभीनी वंदना भगवान चरणों में चढ़ाये ॥

संदर्भ

१. भगवती शत्तक—१३/२ की टीका
२. उत्तराध्ययन—३/१
३. महावीर की साधना का रहस्य—पृ./२७

४. अर्हत् वंदना–पृ./६५
५. दर्शन पाहुड़–२/दंसणमूलों धम्मो
६. वही–३/दंसण भट्टस्स णत्थि निव्वाणं।
७. वही–११
८. वही–२१/सोवागं पढमं मोक्खस्स
९. उत्तराध्ययन–३३/९
१०. अष्टपाहुड़–भावपाहुड़–प्रस्तावना–पृ./३०
११. वही–प्रस्तावना–पृ./३०
१२. आचारांग–१/५/२० वित्ति मिच्छणसमाणन्नेणं अप्पाणेणं लहई समाहिं।
१३. उत्तराध्ययन–१४/२८ सद्धा खयंणे विणस्तु राग।
१४. वही–३६/२५६
१५. अष्टपाहुड़–मोक्षपाहुड़–प्रस्तावना–पृ./३२
१६. वही–प्रस्तावना–पृ./३३
१७. कर्म बंधन व मुक्ति की प्रक्रिया–पृ./२०७, २०८ से उधृत सूत्र कृतांग–२/१/१
१८. अर्हत् वाणी–७१
१९. आवश्यक निर्युक्ति–पृ./२४२, गाथा ५४६
२०. वही–पृ./२४२, गाथा ५४५
२१. अमृत कलश भाग-२–पृ./२५८
२२. कर्मबंधन व मुक्ति की प्रक्रिया–पृ./२१२
२३. अमृत कलश भाग-२–पृ./२५९
२४. वही–पृ./२५९
२५. महावीर की साधना का रहस्य–पृ./२१
२६. वही–पृ./२८
२७. वही–पृ./१९
२८. वही–पृ./१८, १९, २० का सार
२९. वीतराग वंदना–पृ./१२०
३०. सुप्रभातम्–भाग-२–पृ./६, ७
३१. नंदी–संघ स्तुति गाथा-४
३२. वही–संघ स्तुति गाथा-५
३३. वही–संघ स्तुति गाथा-९
३४. वही–संघ स्तुति गाथा-१२
३५. आचारांग–३/२८
३६. आराधना–८/१
३७. जिनदास चूर्णि–पृ./३६४ अरहंतस्स धम्मस्स अवलद्धी बोधि,–दसवैकालिक, पृ./५५७ से उधृत
३८. आचारांग–५/२३
३९. अर्हत् वंदना–पृ./६६

२. समाहिवर मुत्तमं दिंतु-१

सुखी बनने के लिए आदमी कपड़े पहनता है, मोटर, कार खरीदता है, चुनावों में खड़ा होता है, अपने नाम पर धर्मशाला आदि बनाता है, गरीबों को दान देता है–ये सब एक गृहस्थ को सुखी बनाने के साधन हैं। पर सच्चा सुखी तब बनता है जब वह यह सोचता है सुख संयम, त्याग, स्वास्थ्य, शांति, संतोष, सेवा, विसर्जन धर्म, सत्कर्म और निस्पृहता में है। ऐसा चिंतन उसे सुख से समाधि की दिशा में प्रस्थित करता है।

आरोग्य और बोधि लाभ के पश्चात लोगस्स स्तव में उत्तम समाधि की प्राप्ति की अभिलाषा अभिव्यक्त की गई है। यहाँ एक जिज्ञासा का होना स्वाभाविक है कि बोधि लाभ के पश्चात ही उत्तम समाधि की अभिलाषा व्यक्त की गई, पहले क्यों नहीं की गई? यदि रहस्यान्वेषण किया जाये तो समाधान मिलता है कि रत्नत्रय में सम्यक्त्व ही श्रेष्ठ है। इसी को मोक्ष रूपी महावृक्ष का मूल कहा गया है। चार सुख-शय्या में पहली सुख-शय्या निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करना बताया है। जब तक मिथ्या दर्शन शल्य भीतर विद्यमान रहेगा तब तक समाधि की बात या कल्पना निरर्थक है। इसके रहते कभी समाधि नहीं आ सकती। इस अपेक्षा से कहा गया–'नादंसणिस्स नाणं'–जिसमें दर्शन नहीं, श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं, साक्षात्कार नहीं, उसमें ज्ञान भी नहीं है। जिसमें ज्ञान नहीं है उसमें चारित्र नहीं हो सकता इसकी साक्ष्य है आगम वाणी 'नाणेन बिना न हुंति चवगुणा'। अतः ज्ञान-समाधि, चारित्र-समाधि–ये सब दर्शन के पश्चात होने वाली समाधियां हैं। अतएव दर्शन-समाधि के पश्चात ही उत्तम समाधि की प्राप्ति संभव है। क्योंकि श्रद्धा से वीर्य स्फुरित होता है, पुरुषार्थ फलता है और समाधि निष्पन्न होती है। इस प्रकार लोगस्स स्तव में दर्शन-बोधि के पश्चात जो उत्तम समाधि को प्राप्त करने की अभिलाषा अभिव्यक्त की गई है वह एक विशेष रहस्य व अर्थवत्ता को स्वग्रहित किये हुए है।

आगम और समाधि

समाधि शब्द अनेकार्थक है। समाधि का एक अर्थ है—हित, सुख या स्वास्थ्य। स्वबोध, जागरुकता एकाग्रता, प्राण संग्रह, अनाग्रह, सत्यनिष्ठा—ये सुख के हेतु हैं। सुख का एक प्रकार है आरोग्य। क्षमा आदि का अभ्यास, मन का शोधन एवं शरीर का श्रम—ये अपेक्षित आरोग्य को बढ़ाने के साधन हैं। श्वास आदि की संप्रेक्षा से मन का संयम प्राप्त होता है। मन की एकाग्रता के सघन होने पर निर्विकल्प ध्यान सिद्ध हो जाता है।[1] जैसे पानी का योग मिलने पर नमक विलीन हो जाता है वैसे ही जिसका चित्त निर्विकल्प समाधि में लीन हो जाता है उसके चिर संचित शुभाशुभ कर्मों को भस्म करने वाली आत्म रूप अग्नि प्रकट होती है।[2] दसवैकालिक सूत्र में समाधि के चार हेतु प्रज्ञप्त हैं[3]—

१. विनय　　२. श्रुत
३. तप　　४. आचार

दसवैकालिक में एक स्थान पर "संवरसमाहिबहुलेणं" वाक्य का प्रयोग हुआ है।[4] वहां समाधि का अर्थ—समाधान, संवर, धर्म में अप्रकंप अथवा अनाकुल रहना किया है। बहुलं यानि प्रभूत अर्थात् 'प्रभूत समाधि' यह शब्द 'समाहिवरमुत्तमं' के अर्थ को अभिव्यक्त करता है। इसी आगम की प्रथम चूलिका 'रतिवाक्या' में संयम में स्थिरीकरण अर्थात् उत्तम समाधि के अठारह सूत्र उल्लिखित हैं जो बहुत ही अर्थवान और चित्त समाधि के अमोघ आलंबन हैं।[5] आचार-प्रणिधि अध्ययन में प्रणिधि का अर्थ समाधि अथवा एकाग्रता के पर्यायार्थ में प्रयुक्त हुआ है।[6] अगस्त्यसिंह ने समारोपण और गुणों के समाधान (स्थिरीकरण या स्थापन) को समाधि कहा है।[7]

सुख और समाधि

समाधि का सीधा सा अर्थ है—भीतर में जागना। आत्मा अमर है, इस आस्था का निर्माण समाधि का पहला सूत्र है। आनंद मेरा स्वभाव है, यह समाधि का दूसरा सूत्र है। मैं दुःख भोगने के लिए नहीं आया हूँ मेरे भीतर अनंत आनंद का सागर लहरा रहा है, यह समाधि का तीसरा सूत्र है। आत्मा की स्वतंत्रता—मेरा अपना स्वतंत्र कर्तृत्व है, यह समाधि का चौथा सूत्र है। अर्थात् भीतर में जागने का जितना प्रयत्न है, वह सारा का सारा समाधि है। संत सहजो ने कहा है—

जागृत में सुमिरन करो, सौवत में लौ लाय ।
सहजो एक रस ही रहे, तार टूट ना जाय ॥

समाधि के चार साधन हैं–

१. श्वास संयम　　२. वैराग्य

३. एकाग्रता　　४. प्रसन्न्ता

श्वास संयम द्वारा संवेदन नियंत्रित होते हैं

संवेदन नियंत्रण से वैराग्य का प्रस्फुटन होता है।

विचार नियंत्रण से एकाग्रता बढ़ती है।

संवेग नियंत्रण से प्रसन्नता उपलब्ध होती है।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी के संसार पक्षीय पिताजी श्री नेमीचंदजी मोदी निम्नोक्त पद्य को अन्तर जप की तरह जपते रहते थे।

सहजे सहजे सहजानंद, अन्तर्दृष्टि आत्मानंद।
जहाँ देखूं तहाँ परमानंद, सहज छूटे विषयानंद ॥

सामान्यतः समाधि और सुख को एक मान लिया जाता है पर दोनों में अन्तर है जिसको निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

सुख तन, मन, धन से संबंध रखता है, समाधि आत्मिक होती है। आत्मिक समाधि प्राप्त करने वाला तन एवं मन के दुःखों में भी सुख का अनुभव करता है।

- सुखी बनने के लिए आदमी धन कमाता है, क्या केवल धन से आदमी सुखी बनता है?
- सुखी बनने के लिए आदमी मकान बनाता है, क्या केवल मकान बनाने से आदमी सुखी बनता है?
- सुखी बनने के लिए आदमी उच्च शिक्षा प्राप्त कर डिग्री प्राप्त करता है, क्या ऐसा करने से आदमी सुखी बनता है?
- सुखी बनने के लिए आदमी कपड़े पहनता है, मोटर कार खरीदता है, चुनावों में खड़ा होता है, अपने नाम पर धर्मशाला आदि बनाता है, गरीबों को दान देता है, क्या इन सबसे आदमी सुखी बनता है?–ये सब एक गृहस्थ को सुखी बनाने के साधन हैं, सुख के मानदण्ड हैं परन्तु केवल इनसे ही आदमी सुखी नहीं बनता वह सुखी तब बनता है, जब वह यह सोचता है कि सुख, संयम, त्याग, स्वास्थ्य, शांति, संतोष, सेवा, विसर्जन, धर्म, सत्कर्म और निस्पृहता में है। ऐसा चिंतन उसे सुख से समाधि की दिशा में प्रस्थित करता है।

ध्यान और समाधि

आत्मा के द्वारा आत्मा की प्रेक्षा करें–यह जैन आगमों में विवर्णित धर्म

ध्यान की कक्षा है। प्रेक्षा जब उत्कृष्ट भूमि पर चली जाती है तब शुक्ल ध्यान कहलाती है। प्रेक्षा की सिद्धि में पारायण व्यक्ति आधि, व्याधि व उपाधि का यत्नपूर्वक अतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होता है, यह आचार्य महाप्रज्ञ का मंतव्य है।

योगशास्त्रानुसार 'तदेवार्थमात्रनिर्यासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।'[८]—ध्यान ही जब केवल अर्थ ध्येय (ईश्वर) के स्वरूप या स्वभाव को प्रकाशित करने वाला, अपने स्वरूप से शून्य* जैसा होता है, तब उसे समाधि कहते हैं।

महर्षि दयानंद के अनुसार ध्यान करने वाला जिस मन से जिस वस्तु का ध्यान करता है, वे तीनों विद्यमान रहते हैं अर्थात् ध्यानकर्ता, मन और वस्तु तीनों की विद्यमानता रहती है। समाधि में केवल परमेश्वर के आनंदमय, शांतिमय, ज्योतिर्मय, स्वरूप व दिव्य ज्ञान आलोक में आत्मा निमग्न हो जाता है, वहां तीनों का भेद नहीं रहता अभेद प्रणिधान सध जाता है।

ज्ञान समाधि और केवलज्ञान

ज्ञान समाधि से तात्पर्य ज्ञान को केवलज्ञान ही रहने देना संवेदन नहीं बनाना।[९] संवेदन मंद होने पर दर्शन समाधि, मंदतर होने पर समता समाधि और क्षीण होने पर वीतराग समाधि फलित होती है। केवलज्ञान तो ज्ञान समाधि का परिणाम है।

ज्ञान की पराकाष्ठा ही वैराग्य है। समाधि द्वारा ज्ञान के इस उच्चतम क्षितिज की प्राप्ति होने पर मोक्ष अवश्यम्भावी है जिसे प्राप्त कर योगी इस प्रकार अनुभव करता है कि प्राप्त करने योग्य सब कुछ पा लिया, क्षीण करने योग्य अविद्यादि क्लेश (अविद्या, अस्मिता), राग, द्वेष, अभिनिवेश नष्ट हो गये हैं। जिसके पर्व (खण्ड) मिले हुए हैं, ऐसा भव संक्रमण एक देह से दूसरे देह की प्राप्ति रूप संसार का आवागमन छिन्न-भिन्न हो गया है। जैसा कि कहा गया है—

ज्ञानस्येव पराकाष्ठा वैराग्यम् ।
एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति ॥[१०]

चित्त समाधि के सूत्र

१. खान-पान में संयम
२. आर्थिक तनावों से मुक्त रहने का अभ्यास

---

* आनंद, ज्योतिर्मय व शांतिमय परमेश्वर का ध्यान करता हुआ साधक ओंकार ब्रह्मपरमेश्वर में इतना तल्लीन, तन्मय व तद्रूप सा हो जाता है कि वह स्वयं को भी भूल सा जाता है, मात्र भगवान के दिव्य आनंद का अनुभव होने लगता है, यही है स्वरूप शून्यता।

३. बहस और विवाद से बचाव
४. दुःख में भी सुख की खोज का लक्ष्य
५. इच्छाओं का अल्पीकरण
६. प्रतिकूलताओं से अप्रभावित रहने का प्रयास
७. जीवन में व्रतों का स्वीकरण
८. आवेग तथा आवेश पर नियंत्रण
९. गलत धारणाओं का अपनयन
१०. देखा देखी से बचाव
११. स्वावलंबी बनने का अभ्यास

चित्त शुद्धि के उपाय

- अच्छे विचारों का उदय
- पवित्र लक्ष्य की धारणा
- ऊर्जा क्षय के कारणों से बचाव
- नियमित एकाग्रता का अभ्यास
- मैत्री साधना का अभ्यास
- गलत विचारों की प्रेक्षा
- सात्विक लोगों का संपर्क
- मांसपेशियों का शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग)
- दिमाग का सलक्ष्य विश्राम
- सात्विक शुद्ध भोजन

चित्त समाधि का शोधक यंत्र : अर्हत् शरण

सामान्यतः समाधि का आशय चित्त की एकाग्रता (चंचलता का अभाव) से है। चित्त की एकाग्रता मन की शांति और सुख को उत्पन्न करती है। एक सुखी व्यक्ति दूसरों को भी सुखी बनाता है। उसके कार्यों की गुणवत्ता क्रमशः बढ़ती ही जाती है। वह स्वाभाविक रूप से बहुधा अक्षय उन्नति को प्राप्त होता है। ऐसा नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ता है परंतु ऐसी घड़ियों का सामना करने की शक्ति और साहस का उसमें कभी अभाव नहीं होता। वह जिस परिवार का मुखिया होता है, वहां व्यवस्था, अनुशासन, सुख, सद्संस्कार और मानवीय संबंधों की सौरभ रहती है। समाज ऐसे व्यक्तियों को अच्छे जीवन की मिशाल के रूप में देखता है। वास्तव में संसार को वही व्यक्ति जीतता है जो अपने मन को जीतता है। चित्त की एकाग्रता के लिए जीवन में आवश्यकताओं की

परिमितता, समदर्शिता तथा सर्वत्र मांगल्य देखने की शुभ दृष्टि आवश्यक है। इस प्रकार चित्त की प्रसन्नता का उपनाम है—समाधि। प्रमाद की जंजीरों को तोड़ने के बाद ही चरण ध्यान समाधि में गतिमान हो सकते हैं। जिस प्रकार धारणा का प्रकर्ष ध्यान है उसी प्रकार ध्यान का प्रकर्ष समाधि है। समाधि की एकाग्रता ध्यान की एकाग्रता से बहुत प्रकृष्ट होती है।[११]

प्रमाद की जंजीरों को तोड़ने हेतु साधक लोगस्स स्तव के माध्यम से अर्हत् स्तुति करता हुआ—'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'—इस मंत्र से अपने आत्म पौरुष को जागृत करता है। आचार्य मानतुंग ने अर्हत् ऋषभ की स्तुति में कहा—भगवान! आप बुद्ध, शंकर, विधाता और पुरुषोत्तम हैं। अपने इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए आचार्य ने कहा—प्रभो! आप बोधिमय हैं इसलिए बुद्ध हैं, सुख देने वाले हैं इसलिए शंकर हैं, मुक्ति विधान के कर्त्ता हैं इसलिए विधाता हैं और पुरुषों में उत्तम होने से पुरुषोत्तम हैं।[१२]

निश्चय ही ऐसे निर्मलचेत्ता वीतराग अर्हंत भगवन्तों की स्तुति चित्त समाधि का महत्त्वपूर्ण आलंबन है। दसवैकालिक में साधक को सतत जागृति का संबोध देते हुए कहा है—भाव विशुद्धि के जिस उत्कर्ष से पैर बढ़ चले वे न रूके और न अपने पथ से हटे—ऐसा प्रयत्न होना चाहिए।[१३] यह प्रयत्न और संकल्प अर्हत् शरण से पुष्ट होता है। अर्हत् वीतराग है इसलिए मंगल है। अर्हत् की शरण परिणाम शुद्धि का कारण है। शुभ अध्यवसाय मंगल है अतएव अर्हतों की शरण भी मंगल है। भाव विशुद्धि और चित्त समाधि की दिशा में अर्हत् शरण शोध यंत्र के समान हैं।

अकाल कितना ही भयंकर क्यों न हो पर नीम का वृक्ष हरा रहता है। इसका कारण है उसकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं। वैसे ही भक्त की श्रद्धा यदि गहरी है तो उसकी चित्त की प्रसन्नता को कोई नहीं मिटा सकता। भक्त साधक भगवत् स्तुति को निमित्त बनाकर योग साधना से ऊर्जा को जब सहस्रार में अवस्थित करने में सफल हो जाता है तब वह अस्तित्व की अनुभूति से भर जाता है। आत्मा और परमात्मा का अभेद-प्रणिधान होते ही शेष रहता है कोरा आनंद, आनंद, आनंद, परमानंद।

उत्तम समाधि—एक रहस्य

उत्तम समाधि का तात्पर्य अनिदान कोटि की समाधि से है। चित्त का अशुभ से निवर्त्तन और शुभ में प्रवर्त्तन होने पर सहज रूप में मेधा की स्फुरणा, शारीरिक स्फुर्ति, मानसिक पवित्रता, आचार शुद्धि, धृति, क्षमा, संतोष, सत्य, आर्जव, मार्दव आदि सद्गुण समाधि के बीज रूप में उर्वर रहते हैं। उत्तम कोटि की समाधि में

वृत्तियों का परिष्कार हो जाने से सहज प्रसन्नता, आनंद, शांति, वृत्तियों का क्षय, आत्मस्थता तथा अन्तर्ज्ञान का अनावरण भी संभव है। वशिष्ट ऋषि भी श्री राम से कहते हैं—शम, विचार, संतोष और सत्संग—इन चारों का या इनमें से किसी एक का व्यक्ति को सतत् विचार करते रहना चाहिए। जिससे ग्रंथि विच्छेद कर वह दुःखों से मुक्त हो सकता है।[१४]

ये ग्रंथियां तैजस् कार्मण शरीर में अनंत काल तक पड़ी रहती हैं। क्योंकि इन दोनों शरीरों का संबंध आत्मा के साथ अनादि काल से है—'अनादि संबंधे च'। सोमिल ब्राह्मण की आत्मा में गजसुकुमाल मुनि की आत्मा के प्रति ९९ लाख पूर्व जन्म के वैर की गांठ तभी नष्ट हुई जब उसने गजसुकुमाल मुनि के कपाल पर जलते अंगारे रख दिये।

इसी परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य स्मरणीय है कि जैन दर्शनानुसार ९९ लाख पूर्व भवों का वैर व संस्कार जागृत हो सकता है, अतएव ग्रंथियों का विमोचन शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिए। यह भी समाधि का बहुत बड़ा निमित्त बनता है। जैन दर्शन में ग्रंथि विमोचन के अनेकों उपाय हैं—आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित, क्षमायाचना, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान आदि। यह ग्रंथि विमोचन ही भाव समाधि को उत्पन्न करता है अथवा भाव समाधि ग्रंथि विमोचन में अनन्य सहायक है। इनका परस्पर पौर्वापर्य है। जैन आगमों में चार प्रकार की भाव समाधि प्रज्ञप्त है—

१. ज्ञान समाधि २. दर्शन समाधि
३. चारित्र समाधि ४. तप समाधि

भगवान महावीर ने इन चारों को भाव समाधि कहा है। इनको भाव समाधि कहने के अनेको प्रयोजन हैं।

श्रुत (आगम) क्यों सीखा जाता है?

१. ज्ञान प्राप्ति हेतु
२. दर्शन प्राप्ति हेतु
३. चारित्र प्राप्ति हेतु
४. कदाग्रह निवारण हेतु
५. यथार्थ भावों को जानने हेतु

—ज्ञान से हेय और उपादेय का विवेक होता है।
—दर्शन से श्रद्धा दृढ़ होती है।
—चारित्र से प्रतिरोधात्मक शक्ति विकसित होती है।
—कदाग्रह के अन्त से समभाव की शक्ति जागती है।
—यथार्थ भावों को जानने से गन्तव्य पथ प्रशस्त होता है।
भगवान महावीर ने कहा ज्ञानयोगी 'अणिस्सियोवस्सिया' होता है अर्थात् वह

किसी के प्रति झुका हुआ नहीं होता केवल सत्य के प्रति उसका झुकाव होता है। केवल सत्य शौध और सत्य जिज्ञासा में जाने वाला ज्ञान के रहस्य को अनावृत्त कर देता है।[१५] ज्ञान समाधि की परिपूर्णता की निम्न चार बाते हैं[१६]–

१. विशद ज्ञान होना २. एकाग्रचित्त होना

३. स्वयं स्वयं में प्रतिष्ठित होना ४. दूसरों को सत्य में प्रतिष्ठित करना

इसी सत्य को अध्यात्म योगी आचार्यश्री तुलसी ने अध्यात्म पदावली में दर्शाया है–

जब जब बनता मन अमन, होती चित्त समाधि ।
नाम शेष होती स्वयं आधि व्याधि उपाधि ॥[१७]

इसी सत्य को महात्मा कबीर की पंक्तियों में खोजा जा सकता है–

तू बंदा नहीं सचमुच खुद में खुदा है,
बस हुआ एक नुक्ते से जुदा है।
वह नुक्ता तू खूद ही है मुरीद,
मिटा दे खुदी (अहं) को, तू खूद ही खुदा है ॥

एक साधक के लिए श्रमण, भिक्षु और निर्ग्रन्थ–ये साधनात्मक भूमिकाओं के विशेषण हैं किंतु निर्ग्रन्थ साधक की स्नातक भूमिका है। साधक को सिद्धि बंधन में नहीं अपितु निर्ग्रन्थ और निर्बन्ध होने में है। 'स्नातक' और 'केवली' होने के लिए इस भूमिका को साधना के द्वारा प्राप्त करना अनिवार्य है।

लोगस्स में जो वरं और उत्तमं शब्द समाधि के साथ जोड़ा गया है वह अनिदान इस उत्तम कोटि की समाधि 'स्नातक' और 'केवली' की भूमिका पर पहुँचकर सिद्धि प्राप्ति का संकेत है। चित्त समाधि के दस भेदों में भी दसवां भेद 'सिद्धि' ही है। ध्यान के चार अंग ध्याता, ध्यान, ध्येय और समाधि में उत्तम स्थान समाधि को प्राप्त हैं। यह साधना एक सुदीर्घ यात्रा है।

पुरुष निम्न कारणों से स्वयं में विद्यमान गुणों का विनाश कर देता हैं–

- क्रोध से
- प्रतिनिवेश–दूसरों की पूजा, प्रतिष्ठा सहन न करने से
- अकृतज्ञता से
- मिथ्याभिनिवेश–दुराग्रह से

पुरुष निम्नोक्त सूत्रों को धारण कर अविद्यमान गुणों का दीपन करता है–

- गुण ग्रहण करने का स्वभाव होने से
- पराये विचारों का अनुगमन करने से
- प्रयोजन सिद्धि के लिए सामने वाले को अनुकूल बनाने की दृष्टि से
- कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने के लिए

समाधि : एक विमर्श

योगसूत्र में बताया गया है कि मनुष्यों की चित्तवृत्ति के निरोध का नाम ही योग है। योग शास्त्र में राजयोग को श्रेष्ठ माना है। राजयोग का नामान्तर है—समाधि। गीता में जो योग के आठ अंग बताये हैं उनमें समाधि को साधना का शिखर माना गया है। महर्षि पातञ्जल के अनुसार 'निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः'[१८]—विकल्प शून्यता से जो निर्मलता प्राप्त होती है, वह आत्मा की प्रसन्न्ता का हेतु है। भगवान महावीर ने कहा—'समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए'[१९]—पुरुष अपने जीवन में समता का आचरण कर आत्मा को प्रसन्न करे।

वास्तव में मन का निग्रह बहुत कठिन है। यह एक विरोचित कार्य है अतः लग्न, धैर्य, अध्यवसाय, बुद्धिमानी पूर्वक इसके अभ्यास में लग जाना चाहिए। अभ्यास और वैराग्य—इन दो शब्दों में श्री कृष्ण ने मनोनिग्रह का सारा रहस्य ही व्यक्त कर दिया।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा—अभ्यास करो फिर देखोगे मन को जिस ओर ले जाओगे उसी ओर जायेगा। मन धोबी के यहां का कपड़ा है जैसा रंग चाहो वैसा चढ़ जायेगा। इसके लिए—

१. मन पर संयम पाने की इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाना पड़ता है।
२. मन के स्वभाव को जानना पड़ता है।
३. हमें कुछ साधना प्रणालियां स्वीकार कर विचारपूर्वक उनका नियमित अभ्यास करना पड़ता है।
४. मन को उच्च विचारों और उदात्त अन्तःप्रेरणा की खुराक देनी चाहिए।

इस प्रकार मनोनिग्रह की साधनाओं का अभ्यास करने के लिए हमें जीवन की कतिपय अपरिहार्य बातों को विवेकपूर्वक स्वीकार कर एक अनुकूल भीतरी वातावरण निर्मित करना पड़ता है। भीतरी परिवर्तन ही मनोनिग्रह का रचनात्मक और विधेयात्मक पहलू है। इस सच्चाई को समझना जरूरी है कि संसार बाहर है, उसे बाहर ढूँढे और समाधि अपने भीतर है उसे अपने भीतर खोजें परन्तु लोग विपरीत चलते हैं अन्दर में संसार बसाते हैं और बाहर समाधि और सिद्धत्व खोजते हैं। सुई अगर कमरे में गुम हुई है तो छत पर कैसे मिलेगी, उसको वहां ढूंढ़ना व्यर्थ है।

मनोनिग्रह के विघ्न

१. आलस्य
२. अनियमित निद्रा

अक्षय भंडार महाराणा को समर्पित कर दिया। जिससे उन्होंने अपना साम्राज्य पुनः प्राप्त किया।

मूलतः मंत्रों में वह शक्ति है जिससे व्यक्ति आधि, व्याधि और उपाधि का समाधान कर समाधि का वरण कर सकता है। जब व्यक्ति आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त हो सर्वोच्च समाधि दशा में पहुँच जाता है तब आत्मा का पतन नहीं होता। इसलिए लोगस्स में केवल समाधि की मांग नहीं की गई है अपितु 'समाहिवरमुत्तमं' कहकर उत्तम श्रेष्ठ समाधि की कामना व्यक्त की गई है।

जिस प्रकार सेना युद्ध में विजय श्री पाने हेतु पहले से ही अभ्यास करती रहती है। वर्तमान युग में खिलाड़ी क्रिकेट मैच जीतने के लिए पहले से ही अभ्यास करते रहते हैं इसी प्रकार समाधि साधना हेतु साधक विषयों को जीतने का अभ्यास करता रहे।

दूसरी बात किसी भी कार्य को साधने के लिए मन को तो नियंत्रण में रखना ही पड़ता है, जैसे विद्यार्थी को अच्छे अंकों की प्राप्ति हेतु टी.वी., खेल आदि छोड़ने पड़ते हैं। व्यापारी को धन कमाने हेतु घूमना, फिरना छोड़ना पड़ता है।

तात्पर्य यह है कि सांसारिक सिद्धियों के साधक को भी सभी प्रतिकूल बातें सहनी पड़ती हैं तो फिर शाश्वत सिद्धि पाने के लिए तो साधक को चाहिए कि सभी प्रतिकूल विषयों को भी समभाव से सहन करें। इससे आत्मशक्ति का जागरण होता है।

शांति, स्वस्थता और आनंद के लिए भगवान महावीर ने दो महत्त्वपूर्ण उपाय सुझाये हैं–'जागर वेरोवरए', 'खणं जाणाहि पंडिए' अर्थात् जागो, किसी के साथ वैर, विरोध या शत्रुता के भाव मत रखो। ज्ञानी वही है जो प्रतिक्षण जागरूक रहता है, समय का अंकन करता है।

निष्कर्ष

सूक्ष्म जड़ परमाणुओं से निर्मित यह पारदर्शी मन बोध स्वरूप आत्मा का अन्तःकरण/भीतरी यंत्र है। वह प्रकाश का उत्स नहीं है, आत्मा से प्रकाश लेता है और सबको उद्भाषित करता है। मन ज्ञानात्मक नहीं ज्ञान का एक साधन है। यही कारण है कि साधना के क्षेत्र में चैतन्य जागरण की प्रक्रिया पर अधिक बल दिया गया है। यद्यपि जागरण की प्रक्रिया मन को अनुशासन में रखने पर ही संभव है। क्योंकि आनंद सुख नहीं, सुख-दुःख दोनों से परे है। उसे शरीर और मन के स्तर पर कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

लोगस्स एक शक्तिशाली स्तव/मंत्र है। इसका पूरा कल्प है। द्रव्य और भाव आरोग्य, बोधि लाभ और उत्तम समाधि की प्राप्ति के संकल्प के साथ 'आरोग्ग

बोहिलाभं समाहि वर मुत्तमं दिंतु" इस मंत्र को पूर्व निर्दिष्ट विधि के अनुसार नियमित अभ्यास पूर्वक चेतन करें। जिस दिन साधना प्रारंभ करें, ध्यान दें, शरीर और मन की स्थिति क्या है? एक माह पश्चात निरीक्षण करें कि आप किस स्थिति तक पहुँच गये हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि लक्ष्य सिद्धि हेतु सिद्धि का ध्यान और सिद्धि का संकल्प सफलता का अमोघ उपाय है। सिद्धि के लिए साधना के प्रयोग आवश्यक हैं और प्रयोग की सफलता हेतु स्थिरता और नियमितता अपेक्षित है। यह सच्चाई है कि जितनी चंचलता कम होगी उतनी साधना फलवती बनेगी। मनुष्य सत् पुरुषार्थ करें और मानसिक ग्रंथियों को स्वस्थ रखें तो बंधे हुए कर्म भी विफल हो जाते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आरोग्य, बोधि लाभ और समाधि का मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व से प्रारंभ हो ज्ञान, दर्शन, चारित्र से गुजरती हुई आत्मा प्रथम गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक की जो यात्रा तय करता है उसकी तुलना धरातल से किसी पहाड़ की चोटी तक पहुँचने से की जा सकती है। जिस तरह चोटी तक पहुँचने हेतु धरातल पर से अनेकों जगहों से प्रारंभ हुआ जा सकता है, उसी प्रकार मुक्ति शिखर तक पहुँचने के लिए अनेकों आरंभ बिंदु हो सकते हैं, जैसे—सद्गुरु के प्रति श्रद्धा, अन्तर्निहित पौरुष, किसी घटना के संयोग से सम्यक्त्व की उपलब्धि, अर्हत् दर्शन अथवा कोई ओर कारण।

इस दुरुह यात्रा में आत्मा किसी ऊँचाई से गिर भी सकती है जैसे असावधानी वश पहाड़ से व्यक्ति गिर सकता है। अतः चोटी को प्राप्त करने हेतु सतत् जागरूकता और प्रयास अनिवार्य है तथा संकल्प की दृढ़ता भी अपेक्षित है। यद्यपि शुभ-अशुभ कर्म निमित्त कारणों में परिवर्तन तो ला देते हैं किंतु मन का संकल्प इन निमित्तों में सर्वश्रेष्ठ निमित्त कारण है। इससे जितना परिवर्तन संभव है किसी ओर निमित्त से नहीं हो सकता। जो व्यक्ति अपने निश्चय में एक निष्ठ होता है उसके लिए कठिन से कठिन कार्य भी सरल बन जाता है। संकल्प में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति की सभी शक्तियां निहित हैं। संकल्प एक कल्पवृक्ष है जिससे व्यक्ति अनंत आनंद को प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा संकल्प की पृष्ठभूमि और मेरुदण्ड है। श्रद्धा के अभाव में संकल्प में दृढ़ता नहीं आ सकती। यदि किसी भी मंजिल का सोपान है, वहां सिद्धि अवश्य है। किसी भी कार्य सिद्धि की प्रथम शर्त है श्रद्धा। जितना विश्वास बढ़ता है उतनी सिद्धि की आशा बढ़ती है। महात्मा गांधी का कथन है—"संकल्प से व्यक्ति अपने भाग्य को बना सकता है वह दिव्य ज्योति को प्रज्ज्वलित कर सकता है।"

जल पूर्ण कुंभ शुभ और सुन्दर होता है तथा मंगलमयता का प्रतीक भी हो जाता है। हरा-भरा वृक्ष मनोहारी और आकर्षक होता है और वन की शोभा भी

लोगस्स प्रेय से श्रेय की ओर प्रस्थान करने का यात्रा पथ है।
लोगस्स बाहर से भीतरी जगत् में प्रवेश करने का प्रमुख द्वार है।
लोगस्स अयथार्थ से यथार्थ की ओर जाने का अनुपम सेतु है।
लोगस्स अंधकार से प्रकाश की ओर जाने का एक राजमार्ग है।
लोगस्स विभाव से स्वभाव में रमण कराने का महासूत्र है।
लोगस्स सुषुप्ति से जागरण की ओर ले जाने की विलक्षण साधना है।

श्रेय की ओर प्रस्थान, भीतर की यात्रा, यथार्थ की अनुभूति प्रकाश की उपलब्धि, स्वभाव में स्थिति, जागरण का अहसास—इन आत्मगुणों के उपवृहंण और सम्यक् दर्शन के संपोषण की समन्विति का ही प्रकृष्ट रूप है—परम समाधि या आत्म साक्षात्कार। आत्म साक्षात्कार के उन अपूर्व क्षणों में साधक अन्तश्चेतना की बैचेन अन्वेषणा में अपने आप को खो देता है। ये ही वे क्षण होते हैं जिन क्षणों में उसकी चेतना के केन्द्र में एक व्यापक विस्फोट होता है। वह आत्म साक्षात्कार के अनिर्वचनीय आनंद में निमग्न हो जाता है।

अध्यात्म के क्षेत्र में आत्मस्वरूप की उपलब्धि ही सिद्धि मानी गई है। उस सिद्धि को प्राप्त करना प्रत्येक साधक का चरम लक्ष्य है। आत्म साधना ही आत्मा के अनंत और अक्षय वैभव-कोष को उन्मुक्त कर अव्याबाध सुख की प्राप्ति का हेतु बनती है। अर्हतों को वंदन करने का उद्देश्य भी यही है हमारे चित्त में गुणों की महिमा अंकित हो जाये।

मानव मस्तिष्क की चेतना में विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार चार प्रकार की विभिन्न विद्युत तरंगों के नमूने परिलक्षित होते हैं जिनके वैज्ञानिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। जागृत अवस्था में एक विशेष प्रकार की तरंगें मस्तिष्क में उत्पन्न होती हैं। सुषुप्ति (गहन स्वप्न रहित निद्रा) में एक अन्य प्रकार की अत्यन्त मंद तरंगें उत्पन्न होती हैं। ध्यान के पूर्वार्ध तथा तन्द्रा (हल्की नींद) में अन्य विशेष प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं और ध्यान की विश्रामावस्था में एक विशेष प्रकार की शांति सूचक उत्कृष्ट तरंगें उत्पन्न होती है। ध्यान की अवस्था में उत्तरोत्तर शांतिदायक तरंगें बहुगुणित होती जाती हैं। ध्यानाभ्यासी के मस्तिष्क में ऐसी तरंगें लगभग निरंतर ही सर्वाधिक रहने लगती हैं, जिनके प्रभाव से मनुष्य धीर, गंभीर और शांतिप्रिय हो जाता है। सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क में ये उत्कृष्ट तरंगें बहुत घटती-बढ़ती रहती हैं किंतु ध्यान का अभ्यास करने पर ये लगभग सुस्थिर एवं स्थाई हो जाती हैं।

'चंदेसु निम्मलयरा' का प्रयोग ध्यान का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इस प्रयोग में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। इसके सतत् अभ्यास से विवेक बुद्धि व स्मरण

शक्ति की अभिवृद्धि के साथ-साथ शनैः-शनैः जीवन पोषक सकारात्मक विचार, संतुलित एवं उत्तम व्यवहार जीवन का अंग ही बन जाते हैं। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं व्यवहार में परिवर्तन तथा चित्त की निर्मलता हेतु प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लोगस्स में निर्दिष्ट 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' मंत्र को सबसे बड़ी मंगल भावना कहा है। उन्होंने उसकी प्राप्ति का उपाय भी इस स्तव में निम्नोक्त पद्य में खोज निकाला जो अत्यन्त उपयोगी, महत्त्वपूर्ण एवं ध्यान साधना का अभिनव प्रयोग है।

चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

सचमुच यह सिद्धि का साधन है, अध्यात्म विकास का मंत्र है। यह भावना का बहुत बड़ा प्रयोग है। पहले चरण का अर्थ है—चंद्रमा की भांति निर्मल। दूसरे चरण का अर्थ है—सूर्य की भांति प्रकाशक। तीसरे चरण का अर्थ है—समुद्र की भांति गंभीर और चौथे चरण का अर्थ है—जो सिद्ध हैं वे हमें सिद्धि प्रदान करें। यह बहुत साधारण-सा अर्थ लगता है परन्तु श्रद्धा और समर्पण के साथ जिसने तादात्म्य स्थापित किया उसे ऐसा लगेगा कि यह क्या हो गया। बड़ा अजीब-सा हो रहा है। जिसने प्रयोग नहीं किया वह कह सकता है कि यह क्या?

यह चौबीस तीर्थंकरों की तथा अनंत सिद्धों की स्तुति का मंत्र है। कभी वे भी हमारे जैसे ही पुरुष थे। ध्यान साधना के उत्कृष्ट प्रयोगों के द्वारा अहंकार व ममकार का विलय कर उन्होंने सत्य व धर्म के प्रति अपना पूर्ण समर्पण कर दिया अतः वे ऐसे मंगलमय बन गये कि उनके प्रति समर्पण करने वाला व्यक्ति भी स्वयं मंगलमय बन जाता है। चारों दिशाएं उसके लिए मंगलमय बन जाती हैं। भावना और जीवन की सफलता का यह प्रयोग मात्र जानने व लिखने का नहीं, अवश्य करणीय है।[1]

परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री महाप्रज्ञजी उदयपुर पधारे। गुरु गोविंद सिंह विद्यालय में जीवन विज्ञान के प्रयोग चले। उस समय वहां की प्रिंसिपल नियाज बेग थी। उसने अनुरोध किया—पूज्यवर! आप एक बार हमारे विद्यालय में पधारें और हमारे विद्यालय में जीवन विज्ञान के प्रयोग देखें। आचार्य श्री महाप्रज्ञजी वहां पधारे। प्रयोग के बाद आपने विद्यार्थियों से बात की। उनके अनुभव सुने।

अनेक विद्यार्थियों ने कहा—गुरुजी! पहले हमें गुस्सा बहुत आता था, ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा का नियमित प्रयोग करने के बाद गुस्सा आना कम हो गया है।

तथा उस पवित्र आभामंडल में, पवित्र निर्देशन में कुछ प्रयोगों का अभ्यास भी किया है जो निम्न है–

- चंदेसु निम्मलयरा
- आइच्चेसु अहियं पयासयरा
- सागरवरगंभीरा
- सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
- चंदेसु निम्मलयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
- आइच्चेसु अहियं पयासयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
- सागरवर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
- सिद्धा
- ॐ णमो सिद्धम्
- ॐ णमो सिद्धाणं
- णमो सिद्धाणं
- ॐ णमो सिद्धाणं (सुरक्षा कवच)
- ॐ ह्रीं ऐं ॐ जीं जौं चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा सागरवर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम मनोवांच्छितं पूरय पूरय स्वाहा।[४]

(इस मंत्र का एक हजार जप करने से कर्म निर्जरा के साथ-साथ मनः शैथिल्य दूर होता है और प्रतिष्ठा बढ़ती है।)

- ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा सागर वर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः नमः।[५]

(यह मंत्र पवित्र आभामंडल के निर्माण के साथ-साथ सब मनोरथों की सिद्धि व सर्वत्र यश प्रदान करता है।)

- चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
  सागरवर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

(कष्ट के समय इस मंत्र का जप अधिकाधिक अनुप्रेक्षा पूर्वक करने से सहज ही कष्ट से मुक्ति मिलती है। प्रतिदिन इसका जप करना चाहिए। यह मंत्र आत्म विशुद्धि के साथ-साथ संकट निवारण करता है।)

- आध्यात्मिक विकास मंत्र
  चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा
  सागरवर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु मम मनोवांछितं कुरु कुरु स्वाहा।

(मानसिक संकल्प पुष्ट करते हुए २१ दिन एक माला फेरें। फिर प्रतिदिन २१ बार जप करें)

- सिद्धि मंत्र

  ॐ ह्रीं वरे सुवरे अ सि आ उ सा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।

- कार्य सफलता मंत्र

  ॐ सिद्धं णमो सिद्धं जय सिद्धं विजय सिद्धं सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु सिद्धा सिद्धा सिद्धा सिद्धा।

निष्कर्ष

चंद्रमा की महिमा का रहस्य है—निर्मलता
सूर्य की महिमा का रहस्य है—प्रकाश, तेजस्विता
सागर की महिमा का रहस्य है—गहराई
हिमालय की महिमा का रहस्य है—ऊँचाई

निश्चय ही वह व्यक्ति महान होता है, जिसमें निर्मलता, प्रकाश, तेजस्विता, गहराई और ऊँचाई होती है। इन सबका योग दुर्लभ है और दुर्लभ है इन सबसे समन्वित व्यक्तित्व का निर्माण। लोगस्स का यह अन्तिम पद्य विधि पूर्वक एवं लक्ष्य पूर्वक चैतन्य केन्द्रों पर अपने-अपने वर्णों के साथ साधना के लक्ष्य से अभ्यास में लाने से उपरोक्त गुणों का विकास संभव है और उत्तम समाधि की प्राप्ति होती है।

संदर्भ

१. जैन धर्म के साधना सूत्र—पृ./१४५
२. साधना और सिद्धि—पृ./१६
३. मन का कायाकल्प—पृ./६६
४. लोगस्स कल्प (मंत्र विद्या पृ.४०)
५. युवादृष्टि, २००८, दीपावली अंक

है परम शुक्ल लेश्या। उसका रंग इतना सफेद है कि वह इस स्थूल दुनिया में दिखाई नहीं देता। मंत्र, रंग और चैतन्य-केन्द्र इनकी सम्यक् युति में स्वास्थ्य एवं सफल जीवन का रहस्य छिपा है। प्रयोग धर्मा बनकर ही उस रहस्य को हस्तगत किया जा सकता है।

साधना का अंतिम स्वरूप श्वेत रंग और साधना का अंतिम व्यक्तित्व है—अर्हत्। जो साधना के चरम बिंदु तक पहुँच गया, उसका नाम है अर्हत्। हम उस आत्मा को नमस्कार करते हैं जिसके लिए साधना का कोई आयाम शेष नहीं रहा। जो कृतार्थ बन गया है, धर्म जिनका स्वरूप बन गया है, वह है अर्हत्। ज्ञान-दर्शन-चारित्र ये आज हमारे लिए धर्म है किंतु जो व्यक्ति केवली बन जाता है उसके लिए यह सहज स्वभाव बन जाता है। उसमें अनंत-ज्ञान, अनंत-दर्शन और अनंत-चारित्र का स्रोत प्रस्फुटित हो जाता है। इसलिए साधक 'चंदेसु निम्मलयरा' पद का ज्योति केन्द्र पर ध्यान करता हुआ अर्हत् व सिद्ध भगवन्तों से सिद्धि की कामना करता है।

श्वेत रंग अर्हतों की वीतरागता, परमशांति व केवल-ज्ञान का प्रतीक है। यह निर्विवाद सत्य है जहां निश्मलता, स्वच्छता, पवित्रता होगी उसी ओर सभी आकृष्ट होगें। यही कारण है कि तीर्थंकरों के आभामंडल में सब प्राणी निर्वैर भाव को प्राप्त हो जाते हैं। इस रंग की अपनी मौलिक विशेषताएं हैं। इस प्रकार 'चंदेसु निम्मलयरा' मंत्र पद को आवेश शमन का स्वर्ण सूत्र कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि तीर्थंकर क्रोध की भूमिका पार कर शुक्ल ध्यान की भूमिका पर आरूढ़ होते हैं अतः उनका ध्यान व्यक्ति को शुक्ल ध्यान की भूमिका पर आरोहण कराता है।

आध्यात्मिक प्राप्ति के साथ-साथ सिरदर्द का यह बहुत बड़ा इलाज भी है। सरदारशहर की एक बहन ने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किये और कहा—गुरुदेव! सिर में भयंकर दर्द रहता है। इस कारण न माला फेर सकती हूँ और न ही सामायिक कर सकती हूँ। गुरुदेव ने उसे ललाट पर सफेद रंग के ध्यान का प्रयोग लम्बे समय तक करने का सुझाव दिया। उसने सघन आस्था के साथ प्रयोग किया और सफल हो गई। ऐसे उदाहरण हमारे सामने हैं। साधना और सिद्धि में सिद्ध योगी आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने लिखा है—"चंदेसु निम्मलयरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'—ये मंत्र मृत्युंजय महामंत्र का काम करते हैं। जिन लोगों को भयंकर गुस्सा आता है, वे लंबे समय तक चंदेसु निम्मलयरा का सफेद रंग में ललाट पर ध्यान करें तो गुस्सा संतुलित हो जाता है, समस्या समाहित हो जाती है।[६]

ज्योति-केन्द्र पर केवल चंद्रमा का ध्यान किया जाता है। चाँदनी शीतल

होती है, जहाँ शीतलता हो वहाँ अमृत हो कोई आश्चर्य नहीं, इसलिए चंद्रमा का नाम औषधिपति भी है। आयुर्वेद के अनुसार पूर्णिमा की रात को पन्द्रह मिनट चन्द्र-दर्शन से नेत्र ज्योति बढ़ती है। चाँदनी शीतल, आँखों के लिए हितकर और प्रकाश बिखेरती है, यह उसका वैशिष्ट्य है, इसी प्रकार 'चंदेसुनिम्मलयरा' पद को ज्योति-केन्द्र पर श्वेत रंग में जपने से अथवा ध्यान करने से यहां से अमृत स्राव होता है जिसके कारण कुछ-कुछ विशिष्टताएं उजागर तथा उपलब्ध होने लगती हैं। जैसे, आचारात्मक प्रवृत्तियों का विकास, स्वभाव नियंत्रण, कषाय उपशांति, आत्मानुशासन का विकास, आरोग्य, विवेक आदि की प्राप्ति।

वृद्धावस्था से मुक्ति : ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा

चित्त को ललाट के मध्य भाग में (तिलक का स्थान) ज्योति-केन्द्र पर केन्द्रित करें और वहां पर चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें। जैसे पूर्णिमा का चांद उग रहा है और उसकी सफेद रश्मियां ज्योति-केन्द्र पर बरस रही हैं अथवा अन्य किसी चमकती हुई श्वेत वस्तु का आलम्बन लें। (प्रारंभ में रंग स्थिर न हो पाए, तो पुनः अभ्यास करें) (पांच मिनट बाद) अब चित्त को पूरे ललाट पर फैलायें, पूरे ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करें कि श्वेत रंग के परमाणु पूरे ललाट के भीतर तक प्रवेश कर रहे हैं। पूरा ललाट सफेद रंग के परमाणुओं से भर गया है।

चहुं ओर परमशांति व आनंद का अनुभव करें। (सात मिनट)। तीन दीर्घश्वास के साथ प्रयोग को संपन्न करें।

तालु तल से जीभ का स्पर्श कर मस्तिष्क की प्रसुप्त एवं अविज्ञात शक्तियों को जागृत एवं प्रदीप्त किया जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इन्हें पिनियल और पिच्चुटरी का स्थान कहा जाता है। 'णमो अरहंताणं' इस पद्य को १०८ बार माला के रूप में उच्चरित करने से ण और णं पर तालु तल से जीभ का स्पर्श होने से २१६ बार यहां घर्षण होता है, जिसके नियमित अभ्यास से मस्तिष्क की पिनियल, पिच्चुटरी, हाइपोथेलेमस प्रभावित होकर संतुलित होने लगते हैं। जब हाइपोथेलेमस का नियंत्रण मानव के आवेगों पर होता है तब पिनियल पिच्चुटरी प्रभावित होती है। इसके स्राव एड्रीनल को प्रभावित करते हैं। परिणाम स्वरूप हिंसात्मक उत्तेजनाएं कम होती हैं। क्योंकि भावों के अनुसार स्राव, स्राव के अनुसार व्यवहार और व्यवहार के अनुसार आचरण बनता है।

विश्लेषण से संश्लेषण की प्रक्रिया

विभिन्न योगिक क्रियाओं, मुद्राओं, प्राणायाम एवं एकाग्रता का विकास कर

इन स्रावों पर अनुशासन स्थापित किया जा सकता है। इन दोनों ग्रंथियों का क्षेत्र अत्यन्त छोटा होने पर उनका कार्यक्षेत्र समूचा शरीर है। दर्शन और ज्योति-केन्द्र में जो हार्मोन्स बनते हैं, जिन रसो का स्राव होता है, वे जीवन के समस्त कार्यों को नियंत्रित करते हैं। अतः इन दोनों के नियंत्रण का अभिप्राय है—समूचे शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक क्षेत्र पर नियंत्रण, जो अतीन्द्रिय क्षमता की पृष्ठभूमि है।

अनुभूति जन्य ज्ञान निश्चित रूप से चिंतन और सिद्धान्त प्रसूत ज्ञान से अधिक विश्वसनीय, प्रत्यक्ष एवं व्यापक है। मंत्र-विज्ञान में भी हम ज्यों-ज्यों मंत्र की गहराई में उतरेंगे हमारा बौद्धिक एवं सैद्धान्तिक चिंतन छूटता जायेगा और एक विशाल अनुभूति हममें उभरती जायेगी। मंत्र-विज्ञान वास्तव में विश्लेषण-से-संश्लेषण की प्रक्रिया है। अहंकार का पूर्णत्व में विलय मंत्र-विज्ञान द्वारा ही स्पष्ट होता है। अतः मंत्र-विज्ञान को समझने के तीन स्तर हैं—

१. भाषा का स्तर
२. अर्थ का स्तर
३. ध्वनि का स्तर (नाद का स्तर, व्यंजना शक्ति का स्तर)
४. सम्मिश्रण (फलितार्थ)

अतः मंत्र की भाषा, उसकी अर्थवत्ता, उसकी भावसत्ता और उसकी ध्वन्यात्मकता को विधिवत समझकर प्रयोग की भूमिका में उतरना अधिक श्रेयस्कर है।

ज्योति-केन्द्र पर श्वेत रंग की परिकल्पना के साथ कुछ अन्य मंत्र पदों का ध्यान अथवा जप भी अनुपम शांति प्रदान करता हैं—

१. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभवे नमः
२. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री सुविधि नाथाय नमः

इस जप से वाक् सिद्धि की प्राप्ति, उपशम भाव की वृद्धि तथा जन्म जन्मान्तर के दोषों से मुक्ति होती है।

३. ॐ ह्रीं पार्श्वचन्द्राय नमः
४. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री अजित शांतिनाथाय नमः
५. ॐ शांति तथा अर्हं का ध्यान
६. ॐ अ सि आ उ सा नमः
७. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री शीतलनाथाय नमः

निष्कर्ष

प्रमुख रूप में तीर्थंकरों का ध्यान दो प्रकार से किया जा सकता हैं—

१. सालंबन
२. निरालंबन

समवसरण में विराजित तीर्थंकर भगवान के रूप और गुणों का ध्यान सालंबन ध्यान कहलाता है और जब मुक्त तीर्थंकर भगवान के स्वरूप का ध्यान किया जाता है तब वह निरालंबन ध्यान कहलाता है।

वीतराग भक्ति के लिए वीतराग चित्त चाहिए। वीतराग चेतना के चार फलित हैं–

१. जागरण की चेतना
२. समभाव की चेतना
३. पुरुषार्थ की चेतना
४. ध्यान की चेतना

जयाचार्य ने वीतराग प्रभु के ध्यान से प्राप्त होने वाले निम्नांकित बिंदुओं को अर्हत् तीर्थंकर की स्तुति में विवर्णित किया है–

- वीतराग तुल्यता आती है।[७]
- स्वर्गीय सुखोपभोग की प्राप्ति होती है।[८]
- मनुष्य भोग की सुविधा मिलती है।[९]
- नरेन्द्र देवेन्द्र तथा अहमिन्द्र पद प्राप्त होते हैं।[१०]
- आमर्ष आदि लब्धियां प्राप्त होती हैं।[११]
- पाप नष्ट होते हैं।[१२]
- बुद्धि ऋद्धि तथा उल्लास प्रकट होता है।[१३]
- भव्य जीव मोक्ष या देवलोक जाते हैं।[१४]
- मनुष्य भव में राज्य भोग तथा धन का भंडार पाते हैं।[१५]

निष्कर्षकतः कहा जा सकता है कि 'चंदेसु निम्मलयरा' मंत्र आत्मज्ञान तथा परमात्म सिद्धि का महान मंत्र है, परंतु यह तभी संभव हो सकता है जब ज्ञान हृदयस्थ होकर आचरण में ढल जाये। महात्मा गांधी ने उचित ही कहा है–"अगर यह सही है और अनुभव वाक्य है तो समझा जाये कि जो ज्ञान कण्ठ से नीचे जाता है और हृदयस्थ होता है, वह मनुष्य को बदल देता है, शर्त यह है कि वह ज्ञान आत्मज्ञान हो।"[१६]

संदर्भ

१. सुप्रभातम्–पृ./२३५
२. मन का कायाकल्प–पृ./२३
३. भीतर का रोग भीतर का इलाज–खण्ड १, शारीरिक चिकित्सा, पृ./८६
४. वही–खण्ड २, मनोचैतसिक चिकित्सा–पृ./१६४, मंत्र एक समाधान–पृ./३८२
५. ओलखणा–पृ./४३, ४४

६. साधना और सिद्धि–पृ./१७
७. चौबीसी–८/
८. वही–८/४
९. वही–८/४
१०. वही–८/५
११. वही–८/४
१२. वही–१९/६
१३. वही–६/६
१४. वही–८
१५. वही–८/४
१६. बापू के आशीर्वाद, २१६-२१७

५. आइच्चेसु अहियं पयासयरा

जब प्रभु हृदय में बस जाते हैं तब चेतना का उर्ध्वारोहण होता है। चेतना का उर्ध्वारोहण होने पर प्रेय से श्रेय की ओर प्रस्थान होता है। चैतन्य पर अरुण रंग में 'णमो सिद्धाणं' 'आइच्चेसु अहियं पयासयरा' 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु' का प्रयोग अन्तर्दृष्टि के जागरण का महत्तम प्रयोग है। इस केन्द्र के जागृत होने से कुशाग्र बुद्धि, एकाग्रता वृद्धि, कार्य क्षमता वृद्धि, कार्य सिद्धि और निर्णायक शक्ति का विकास होता है।

जिस प्रकार लोक तीन भागों में बंटा हुआ है वैसे ध्यान शरीर भी तीन भागों में विभक्त है। प्राचीन साहित्य में 'लोक' शब्द शरीर के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आयुर्वेद में भी 'लोक' शब्द का एक अर्थ मिलता है शरीर। शरीर लोक के तीन विभाग हैं—

१. नाभि के ऊपर का भाग ऊँचा लोक
२. नाभि का भाग तिरछा लोक
३. नाभि के नीचे का भाग अधोलोक

जो व्यक्ति अपना विकास करना चाहता है उसे उर्ध्व लोक में ज्यादा रहना चाहिए। जो व्यक्ति ऊँचे लोक में नहीं रहता, वह ऊँचा काम नहीं कर सकता। जब चेतना ऊपर के केन्द्रों में रहती है तब उदात्त, परिष्कृत वृत्तियाँ विकसित होती हैं। नाभि, भृकुटि और मस्तिष्क के उर्ध्व भाग में आत्मा और शरीर के संगम बिंदु माने जाते हैं। जितनी भी उदात्त भावनाएँ हैं वे सब हृदय, कंठ और सिर के चक्रों में उपजती हैं। जब प्रभु हृदय में बस जाते हैं तब चेतना का उर्ध्वारोहण होता है। चेतना का उर्ध्वारोहण होने पर प्रेय से श्रेय की ओर प्रस्थान होता है। चैतन्य-केन्द्रों की दृष्टि से मस्तिष्क के बाद दर्शन-केन्द्र का स्थान आता है।

यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। यहां इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—इन तीन प्राण धाराओं का संगम होता है। इड़ा का रंग नीला, पिंगला का लाल और सुषुम्ना का रंग गहरा लाल है। इस केन्द्र पर सामान्य तथा हल्के लाल रंग का

ध्यान किया जाता है। "आइच्चेसु अहियं पयासयरा" का प्रयोग दर्शन-केन्द्र पर किया जाता है।

अन्तर्दृष्टि के जागरण का केन्द्र

प्रज्ञा संपन्न आचार्य, आचार्य श्री महाप्रज्ञजी का मानना है कि दर्शन-केन्द्र पर सूर्य के प्रकाश का अथवा बाल सूर्य का ध्यान अन्तर्दृष्टि के जागरण का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इसका अभ्यास करने वाला तीसरे नेत्र का उद्घाटन कर सकता है। इस प्रयोग को करने वाला बाहरी पढ़ाई पर निर्भर नहीं रहता उसकी अतीन्द्रिय चेतना के स्रोत खुल जाते हैं।[1]

बाल सूर्य का रंग पराक्रम और पौरुष का रंग माना गया है। जिन लोगों में सुस्ती ज्यादा है, आलस्य और मंदता है, जिनमें मोह प्रबल है, जिनकी अन्तर्दृष्टि जागृत नहीं है उनके लिए णमो सिद्धाणं का हल्के लाल रंग के साथ इसी केन्द्र पर ध्यान करना उपयोगी है। आज्ञाचक्र के जागृत होने से ज्योति-केन्द्र और दर्शन-केन्द्र की कार्यक्षमता अत्यन्त विकसित हो जाती है तथा व्यक्ति अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि हो जाता है। इसके जागृत होने से पाप करने की इच्छा समाप्त होने लगती है। व्यक्ति पापभीरु बनता है। एकाग्रता वृद्धि, कार्य क्षमता वृद्धि, कार्य सिद्धि और निर्णायक शक्ति का विकास होता है।

मन से परे निर्विचार में जाने के लिए दर्शन-केन्द्र पर ध्यान करना चाहिए। इसके दीर्घकालिक अभ्यास से अन्तदर्शन और दूरदर्शन की लब्धि संभव है।[2] जिसकी अन्तर्दृष्टि जाग जाती है उसका चिंतन, विचार, निर्णय, सारे अलौकिक होते हैं। भगवान महावीर पंडित, विद्वान या ज्ञानी नहीं थे पर वे अन्तर्दृष्टि से, अतीन्द्रिय चेतना से संपन्न थे। उनका तीसरा नेत्र जागृत था। सूत्र कृतांग में भगवान महावीर को अनंत चक्षु कहा है। केवलज्ञानी की आँख पूरे रोम-रोम में होती है।

बुद्धि और अतीन्द्रिय ज्ञान—इन दोनों के बीच में अन्तर्दृष्टि का जागरण होता है। इस जागरण से विवेक चेतना का विकास, समता का विकास, अतीन्द्रिय चेतना का विकास तथा प्रिय और हित में हित को प्रमुखता देने की दृष्टि प्राप्त होती है। नेपोलियन बोनापार्ट के वाटर लू की लड़ाई में हारने का प्रमुख कारण था उसकी पिच्युटरी ग्लैण्ड का खराब हो जाना। जिसके कारण वह सही समय पर सही निर्णय नहीं ले सका। इस ग्रंथि के विकृत होने पर स्राव के अनियंत्रित होने से व्यक्ति के चिन्तन और निर्णय में विकृति आ जाती है और वह उचित समय पर उचित निर्णय नहीं ले सकता। यह ग्रंथि विकृत होती है भावना के क्षोभ द्वारा।

जब मनुष्य अधिक लालची होता है, अधिक आतुर होता है तो निम्न प्रकृति की वृत्तियाँ पैदा होती हैं।[3] दर्शन-केन्द्र के एक स्राव एस.टी.एच. का जब स्राव होता है तब वह एड्रीनल ग्रंथि को उत्तेजित करता है जिसके कारण नाना प्रकार की विकृतियाँ एवं बीमारियां पैदा होती हैं, जैसे—

- अधैर्य और विषाद के भावों का पनपना।
- आतुरता व ग्लानि के भाव बने रहना।
- आत्महत्या की भावना होना।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता के क्षीण होने से संक्रामक रोगों की सम्भावना का बढ़ना।
- हाइपर एसीडिटी और अल्सर जैसी बीमारियों का जन्म।

वास्तव में दर्शन-केन्द्र का स्थान बहुत बड़ी खिड़की है। वहाँ से बहुत कुछ देखा जा सकता है। योगाभ्यासी को दीर्घ अभ्यास के बाद इस चक्र की सिद्धि होती है। आज्ञा-चक्र, तृतीय नेत्र इसी केन्द्र के पर्याय हैं। यह अतीन्द्रिय क्षमताओं और चेतना का स्रोत है। यह एक ऐसा स्रोत है जिसका प्रवाह अविच्छिन्न रहता है। यह कुंड का पानी नहीं, कुएं का स्रोत है, जहाँ प्रतिदिन नया पानी आता है।[4] यह केन्द्र दोनों भृकुटियों के मध्य स्थित है। विज्ञान ने इसी स्थान पर पिच्युटरी ग्रंथि का होना माना है। इसे आज्ञादायिनी और संदेशवाहिनी ग्रंथि माना गया है। शरीर में सभी सूचनाएं यहीं से संप्रेषित होती हैं।

रशिया का एक अद्भुत शिशु

त्रिनेत्रधारी शिव के मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है, जिन्हें चन्द्रमौली भी कहते हैं। त्रिनेत्र होने से नारियल को शिव का स्वरूप मानते हैं, उसे त्रिनेत्र कहते हैं। यह शुभ, सौभाग्य और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के पास एक भाई अखबार की कटिंग लेकर आया, जो गुजराती भाषा में था। उसमें रशिया के एक शिशु का चित्र छपा था। उस शिशु में दो आँखों के अतिरिक्त एक तीसरी आँख और दिखाई दे रही थी। माता-पिता ने सोचा भद्दा चिह्न है इसलिए ऑपरेशन करा लेना चाहिए। पर डॉक्टरों ने ऑपरेशन के लिए इन्कार कर दिया। जब वह लड़का बोलने लगा तो ऐसी-ऐसी बातें कहनी शुरू की कि सुनकर सबको आश्चर्य होता। एक दिन उसके माता-पिता कहीं यात्रा पर जा रहे थे, उस बच्चे ने जिद्द पकड़ ली कि यात्रा पर नहीं जाने दूँगा। उन्होंने कहा—अभी हमारा रिजर्वेशन है, बाद में फिर टिकट मिलेगी नहीं और जाना भी जरूरी है। उस बच्चे ने उन्हें किसी भी तरह से नहीं जाने दिया। अगले दिन समाचार पत्र में पढ़ा—वह ट्रेन दुर्घटना ग्रस्त हो गई। उस

ट्रेन के जिस डिब्बे में उनका रिजर्वेशन था, वही डिब्बा सबसे ज्यादा क्षतिग्रस्त हुआ। उस डिब्बे का कोई भी यात्री बच नहीं सका। सबके सब मृत्यु के ग्रास बन गये। उसके पश्चात उस अद्‌भुत शिशु ने ऐसी-ऐसी बातें बताई जिनकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

जिसके पास तीसरा नेत्र होता है, उसकी अतीन्द्रिय चेतना जागृत होती है। अवधि ज्ञान तो बहुत आगे की बात है। यद्यपि चेतना सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है, ध्यान योगी हृदय क्षेत्र में उसके सूक्ष्म संस्थान का अनुभव करते हैं। आत्म ज्योति का अनुभव भृकुटि मध्य में तथा शीर्षस्थ में भी करते हैं।

आज्ञा चक्र का महत्त्व

दर्शन-केन्द्र (आज्ञा-चक्र) पर ऊर्जा स्रोत अत्यन्त गोलार्ध के साथ घूमता है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ गोल और वर्तुलमय है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे भी गोल हैं, रोटी, चकला, बर्तन सब गोल हैं, इतना ही नहीं हमारी भावों की तरंगें भी गोल हैं। क्रोध, मान, माया व लोभ की तरंगें भी गोल हैं।

जानने की बात यह है कि इन गोलाईयों के घुमाव, घुमने की प्रतिक्रियाएं, उनके घुमावों की प्रक्रिया और उसके परिणाम क्या हैं, कैसे हैं? सामान्य पदार्थ और क्रोध आदि भाव तरंगों में ये घुमाव काउन्टर क्लोकवाइज अर्थात् एन्टी क्लोकवाइज होते हैं। सत्-जागरण के लिए परमसत् के प्रति किया जाता स्मरण, स्तवन आदि श्रद्धा, ज्ञान और भेद-विज्ञान के द्वारा तरंगें क्लोकवाइज घूम जाती हैं। ऐसी स्थिति में क्रोध करुणा और क्षमा के रूप में रूपान्तरित होता जाता है। आज्ञा-चक्र भावना केन्द्र के साथ आभामंडल का भी मुख्य केन्द्र है। महापुरुषों की करुणा कायोत्सर्ग के समय परम शांतवाहिता के रूप में देह रश्मियों के साथ किरणोत्सर्ग करती हैं, उसे अनुग्रह कहा जाता है। इसी कारण महापुरुषों के चरणों में नमस्कार किया जाता है। यह अनुग्रह भी मंडलाकार होता है। यह जब चारों तरफ क्षेत्रान्वित होकर फैलता है तब उसे अवग्रह मंडल कहा जाता है।

धर्म संग्रह में अवग्रह की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि गुरु के आसन के आस-पास साढ़े तीन हाथ जगह अवग्रह कहलाती है। किसी को इस अवग्रह में प्रवेश करना हो तो 'अणुजाणह' शब्द कहकर उसकी आज्ञा लेनी होती है। यह नाप गुरु के आत्म शरीर प्रमाण चारों तरफ की मित नाप वाली भूमि का माना जाता है।

गुरुमंडल में प्रवेश से पूर्व शिष्य दोनों हाथ आज्ञा चक्र के पास ले जाकर गुरु से आज्ञा मांगता है—हे प्रभो! मुझे आज्ञा दे मैं आपके अवग्रह आभामंडल में

प्रवेश करना चाहता हूँ। जब गुरु आज्ञा दे तब हमारा उसमें प्रवेश और गुरु के साथ संपर्क शुरू हो जाता है।

इस प्रकार आज्ञा चक्र के महत्त्व और स्वरूप को समझना अत्यन्त कठिन है। अनुभव की परिपक्वता से साधना और सिद्धि के स्रोत जीवन के महत्त्वपूर्ण सोपान सिद्ध होते हैं।

प्रयोग प्रविधियां

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने सिद्धों के पदस्थ और रूपस्थ ध्यान की अनेकों विधियों का उल्लेख अपनी अनेक कृतियों में किया है, जिनका मुख्यतः संबंध दर्शन-केन्द्र से ही है, जो निम्नलिखित है–

१. सिद्धा

यह मंत्र अति प्राचीन है। यह महान और शक्तिशाली मंत्र है। दर्शन-केन्द्र पर इस मंत्र का लयबद्ध उच्चारण पांच से पन्द्रह मिनट तक किया जा सकता है। यह अन्तर्दृष्टि के जागरण का प्रयोग है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय सिद्धा मंत्र का जप मंगलकारी माना गया है। सूर्योदय के समय एक श्वास में २१ अथवा ३१ बार 'सिद्धा' मंत्र का उच्चारण मंगल वातावरण व इष्ट सिद्धि देने वाला होता है।[५]

२. ॐ णमो सिद्धम्

यह भी प्राचीन और प्रभावक मंत्र है। इसका प्रयोग भी उपरोक्त विधि से किया जाता है।

प्राचीनकाल में पढ़ने वाला शिष्य जब अपना अध्ययन प्रारंभ करता तो 'णमो सिद्धम्' मंत्र लिखता था। केवल जैन ही नहीं, पुराने जितने भी लोग हैं गुरुजी पढ़ाते समय उन्हें यह मंत्र लिखते थे। गुजरात, महाराष्ट्र और पूरे दक्षिण में यह मंत्र सर्वत्र व्यापक था।

'ॐ नमः सिद्धम्' मंत्र का विधिवत शरीरस्थ अंगों पर न्यास करने से शरीर सुरक्षा कवच का निर्माण होता है। इसकी विधि निम्न प्रकार से उपलब्ध है[६]–

- मंत्र

  ॐ नमः सिद्धम्
- मंत्र संख्या

  इस मंत्र का एक बार पाठ करें। जिस अवयव पर न्यास किया है उस अवयव पर मंत्र का साक्षात् करें।

- प्रयोग विधि
  पांचों अवयवों पर इस मंत्र का न्यास करें।
  ॐ भ्रू युग्म
  न नासाग्र
  मः ओष्ठ युगल
  सि कर्णपाली
  द्धं ग्रीवा
- परिणाम
  शरीर रक्षा और कवच

३. ॐ णमो सिद्धाणं

दर्शन-केन्द्र (आज्ञा-चक्र) पर बाल सूर्य (अरुण रंग) के साथ इस मंत्र का जप करने से आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है। सूर्य और मंगल ग्रह का प्रतिकूल प्रभाव भी इस जप से अनुकूल और उपयोगी हो जाता है।[७] श्वास के साथ इस मंत्र का जप करने से मन की सुप्त शक्तियां जागृत होती हैं।[८] णमो सिद्धाणं का जप शाश्वत आनंद की अनुभूति के लिए किया जाता है। शारीरिक दृष्टि से अवलोकन करें तो दर्शन-केन्द्र पर 'ॐ णमो सिद्धाणं' अरुण रंग में तन्मयता से जपने से रक्त विकार मिटते हैं, रक्त के लाल कण हिमोग्लोबीन बढ़ने लगते हैं, नाड़ी संस्थान शुद्ध होता है, दिल (हार्ट) सशक्त बनता है, साधक स्फूर्ति, चुस्ती, क्षमता व शक्ति की वृद्धि का अनुभव करता है।

अरुण रंग शक्ति वर्धक होने के साथ-साथ कर्म ग्रंथियों का भेदक भी है। जिन्हें वात और कफ के कारण कोई शिकायत है वे प्रातः और सायं 'णमो सिद्धाणं' की अरुण रंग की परिकल्पना के साथ दो माला फेरें। इस अभ्यास संपन्नता के पन्द्रह मिनट बाद 'णमो आयरियाणं' की पीले रंग की परिकल्पना के साथ एक माला अवश्य फेरें। ज्योतिष शास्त्रानुसार सिंह, वृश्चिक और मेष राशि के स्वामी के लिए 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' नित्य जपने योग्य अनुकूल मंत्र है।[९]

४. ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं (सुरक्षा कवच)

बाहरी आघातों, प्रत्याघातों, अनिष्ट विचारों से अपनी सुरक्षा के लिए मंत्र का कवच बनाया जाता है वैसे ही प्राण ऊर्जा का कवच बनाया जा सकता है।

विधि

दर्शन-केन्द्र पर ध्यान करें। 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' का जप करें। बाल सूर्य को सामने देखें। उसकी रश्मियां दर्शन-केन्द्र पर जा रही हैं, ऐसा सोचें। शरीर के प्रत्येक अवयव को प्राणऊर्जा से परिपूर्ण कर रही है। मंत्र का जप निरन्तर चलता

रहे। शरीर के चारों ओर अभेद्य कवच का निर्माण हो रहा है, ऐसा संकल्प पुष्ट करें। इस प्रकार शरीर के चारों ओर तीन वलयों का निर्माण करें।[११]

५. आइच्चेसु अहियं पयासयरा

- प्रेक्षा
  चाक्षुस केन्द्र प्रेक्षा
- मंत्र
  आइच्चेसु अहियं पयासयरा
- प्रयोग विधि
  आइच्चेसु अहियं पयासयरा—इस पद्य का दर्शन-केन्द्र पर अर्थात् दोनों भृकुटियों के और दोनों आँखों के मध्य भाग में ध्यान करना।
- लाभ
  प्राणऊर्जा सक्रिय रहती है।[१२]

निष्कर्ष

मानव शरीर का निर्माण विभिन्न तत्त्वों से हुआ है। उसमें दो चीजें काम कर रही हैं। सूर्य शक्ति से हमारे अन्दर विद्युत शक्ति काम कर रही है। इसी प्रकार दूसरा संबंध है सोमरस प्रदाता चंद्रमा से। इससे 'मेग्नेटिक करेन्ट' काम कर रहा है। इस 'मेग्नेटिक करेन्ट' (चुम्बकीय विद्युतधारा) की सहायता से मानव के शरीर और उसकी मांसपेशियों तक पहुँचा जा सकता है किन्तु मन की अनंत गहराई और द्रव्य का शक्ति-बीज इस करेन्ट से परे है। इसके लिए हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों और महात्माओं ने दिव्य शक्ति को आविष्कृत किया। वह दिव्यशक्ति दिव्य कर्ण है। इससे हम सामान्य मन को सुन सकते हैं और सुना भी सकते हैं। जिस प्रकार समुद्र में 'केबिल' डालकर एक-दूसरे के संवाद को दूर तक पहुँचाया जा सका और बाद में इसी से तार का और फिर बेतार-के-तार का मार्ग भी आविष्कृत हुआ। आज तो चन्द्रलोक तक अपनी बात प्रेषित कर सकते हैं, वहां से बात प्राप्त कर सकते हैं। 'सेटेलाइट' से हम सुपरिचित हैं, समस्त संवाद उसमें संग्रहित हो जाते हैं और फिर वहां से उन्हें अलग-अलग स्थानों को भेजा जाता है। फोन, मोबाइल आदि इसी विद्या के परिणाम हैं। आशय यह है कि हम जो शब्द बोलते हैं उन्हें पकड़ा जा सकता है, पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है, उन्हें गन्तव्य तक पहुँचाया जा सकता है। विश्वभर की सभी ध्वनियां आकाश तरंगों में मिलकर सर्वत्र फैल चुकी हैं—वे अब भी हैं, उन्हें पकड़ा जा सकता है। यह भी संभव है

कि आकाश में फैली हुई अरिहंतों और तीर्थंकरों की वाणी भी एक दिन विज्ञान की सहायता से हम सुन सकें। इसी धरातल पर अध्यात्म शक्ति की अतिविकसित अवस्था में हम मंत्र के (बेतार-के-तार) माध्यम से अरिहंतों और तीर्थंकरों का साक्षात्कार कर सकते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार चिंतामणि रत्न से वांछित फल की प्राप्ति होती है उसी प्रकार अरिहंत व सिद्धों के ध्यान से उनके गुणों का स्मरण करने से चित्त शुद्धि द्वारा अभिलषित फल की प्राप्ति होती है।

संदर्भ

१. साधना और सिद्धि–पृ./१८
२. सुप्रभातम्–पृ./२८३
३. अप्पाणं सरणं गच्छामि–पृ./५७
४. मन का कायाकल्प–पृ./४६
५. एसो पंचणमोक्कारो–पृ./६४
६. मंत्र एक समाधान–पृ./२८
७. वही–पृ./१६१
८. वही–पृ./२७
९. ऐसोपंचणमोक्कारो–पृ./२१७
१०. आपकी राशि आपका समाधान
११. भीतर की ओर–पृ./२६२
१२. भीतर का रोग भीतर का इलाज–खण्ड, एक शारीरिक चिकित्सा–पृ./८१

६. सागरवरगंभीरा

"सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु"–मंत्र का प्रयोग विशुद्धि-केन्द्र पर नीले रंग में करते हुए सिद्ध भगवान से सिद्धि की कामना की जाती है। सागर भी शीतल और पवित्र, नीला रंग भी शीतल और पवित्र तथा अरिहंत और सिद्ध भगवान भी शीतल (शुक्ल लेश्या) और पवित्र–यह एक अनुपम और अद्वितीय प्रयोग है–पवित्रता को बढ़ाने का और शुभ लेश्याओं में अनुवर्त्तन करने का।

तीर्थंकर भगवन्तों को सागर के समान गंभीर बताकर उन्हें 'सागरवरगंभीरा' संबोधन से संबोधा गया है। सागर में अनेकानेक नदी, नाले आदि मिलते हैं फिर भी उसमें से पानी नहीं छलकता इसी प्रकार तीर्थंकरों के सामने भी अनुकूल प्रतिकूल कितने भी परिषह क्यों न आएं वे किंचित मात्र भी चलित नहीं होते हैं। जैसे भगवान महावीर ने चंडकौशिक, संगमदेव, गोशालक आदि के महान उपसर्गों को सहन किया था।

कला, चातुर्य एवं विद्या का केन्द्र

'सागरवरगंभीरा' मंत्र का प्रयोग विशुद्धि-केन्द्र पर किया जाता है। यह हमारे शरीर में कला, चातुर्य एवं विद्या का केन्द्र है। यह केन्द्र कण्ठ के मध्य भाग में है। स्वास्थ्य के संदर्भ में कण्ठ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बोलने, गाने व खाने में गले का अपना विशिष्ट उपयोग है। कफ प्रकृति का संतुलन इस केन्द्र पर ध्यान करने से होता है। योग के ग्रंथों में तो यहां तक कहा गया है कि कोई व्यक्ति गहरी धूप में बैठकर विशुद्धि-केन्द्र पर ध्यान करता है तो उसे ऐसी अनुभूति होती है कि मैं एयरकंडीशन में बैठा हूँ। इस प्रकार यह स्थान शीतलता और पवित्रता का है। विशुद्धि-केन्द्र पर नीले और हरे रंग का ध्यान करने से वासना स्वतः विसर्जित हो जाती है, कम हो जाती है।[1] विशुद्धि केन्द्र पर 'सागरवरगंभीरा' का नीले रंग में ध्यान करते हुए सिद्ध भगवान से सिद्धि की कामना की जाती है। सागर भी शीतल

और पवित्र, नीला रंग भी शीतल और पवित्र, विशुद्धि-केन्द्र भी शीतल और पवित्र तथा अरिहंत और सिद्ध भगवन्त भी शीतल (शुक्ल लेश्या) और पवित्र—यह एक अनुपम और अद्वितीय प्रयोग है—पवित्रता को बढ़ाने का और शुभ लेश्याओं में अनुवर्त्तन करने का।

कण्ठ संयोजक है। यह अधो भाग को उर्ध्वभाग से संयोजित करता है। इसमें थाईराइड है। इसमें चयापचय की क्रिया होती है जो रोग-मुक्त, शोक-मुक्त, चिरंजीवी होना चाहता है वह विशुद्धि-केन्द्र को जागृत किये बिना क्या सफल हो सकता है?[२] हमारे शरीर में नौ ग्रह हैं उनमें सूर्य का स्थान तैजस् केन्द्र और चंद्रमा का स्थान विशुद्धि-केन्द्र है। ज्योतिष चन्द्रमा के आधार पर व्यक्ति के मन की स्थिति को पढ़ता है। तैजस-केन्द्र हमारे शरीर में वृत्तियों को उभारता है और विशुद्धि-केन्द्र उन पर नियंत्रण करता है।

दीर्घजीविता का रहस्य

विशुद्धि-केन्द्र पर 'सागरवरगंभीरा' पद्य का नीले रंग में ध्यान—इसका गूढ़ार्थ इतने उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ है जिसको साधारण बुद्धि से समझना अत्यन्त कठिन है। यहां ध्यान करने से निम्न गुणों का उद्दीपन सहज हो जाता है—

- मनोबल की वृद्धि।
- बौद्धिक चेतना की सक्रियता।
- मन की सक्रियता में वृद्धि।
- सकारात्मक सोच व सकारात्मक दृष्टि का विकास।
- शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य में वृद्धि।
- चयापचय की क्रिया का संतुलन।
- वृत्तियों पर नियंत्रण—प्रमाणिकता, सत्य-निष्ठा आदि चारित्रिक गुणों का विकास।
- चंचलता पर नियंत्रण।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने 'साधना और सिद्धि' में लिखा है—"सागरवर गंभीरा"—यह प्रयोग विशुद्धि-केन्द्र पर किया जाता है। यह हमारे शरीर में चयापचय का स्थान है। इसका पाचन तंत्र और स्वास्थ्य के साथ बहुत गहरा संबंध है। पाचन तंत्र का संबंध वृत्तियों के साथ जुड़ा हुआ है। आहार और वृत्तियों का भी गहरा संबंध है। वृत्तियों के व्यक्त और अव्यक्त होने में आहार का बहुत बड़ा योग है। अगर आपका आचरण स्वस्थ है तो चिंतन भी स्वस्थ होगा। मस्तिष्क

स्वस्थ होगा तो सब कुछ स्वस्थ होगा। पाचन ठीक नहीं है तो अपान भी दूषित हो जायेगा। जिसका अपान दूषित है, उसमें नकारात्मक दृष्टिकोण, नकारात्मक सोच, नकारात्मक कल्पना, अनिष्ट भावना, आत्महत्या की भावना आदि पैदा होंगे। दूषित अपान के कारण मस्तिष्क निर्मल नहीं रह सकता। बहुत महत्त्वपूर्ण बात है मस्तिष्क को पवित्र रखना, मस्तिष्क की शक्ति का विकास करना।"[३] जिन व्यक्तियों में माया कपट ज्यादा हो उन्हें विशुद्धि-केन्द्र पर 'णमो अरहंताणं' का ध्यान करना चाहिए।[४] घ्राणेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने के लिए 'णमो आयरियाणं' का विशुद्धि-केन्द्र पर नीले रंग में ध्यान किया जाता है। आचार्य की चारित्र सुवास से गंध विषय वर्जन होता है।[५] क्रोध ज्यादा आए तो नीले रंग को श्वास के साथ ग्रहण करें।[६] स्मृति विकास के लिए यही जप विशुद्धि-केन्द्र पर पीले रंग में जपना चाहिए।[७] अरहंता मंगलं की एक माला इसी केन्द्र पर जपने से अनेक योग्यताओं का विकास संभव है। सर्वांगासन, भुजंगासन और उनके प्रतिपक्ष में मत्स्यासन का प्रयोग करने से थाईराइड ग्रंथि का व्यायाम होता है। तनाव मुक्ति, मन की पवित्रता तथा थाइराइड ग्रंथि की स्वस्थता के लिए ये तीनों आसन अति उत्तम हैं। णमो आयरियाणं की एक माला विशुद्धि-केन्द्र पर जपने से विधायक भाव, मंगल भावों का विकास होता है।[८] इस केन्द्र के जागृत होने से व्यक्ति कवि, महाज्ञानी, शांत चित्त, निरोग, शोकहीन और दीर्घजीवी हो जाता है। थाईराइड ग्रंथि के रोग भी इस चक्र के जागृत होने पर नहीं होते।

प्रयोग प्रविधि

- मंत्र
  सागरवरगंभीरा
- केन्द्र
  विशुद्धि केन्द्र (विशुद्धि केन्द्र का संवादी स्थान थाईराइड ग्रंथि है)
- प्रयोग विधि
  सागरवर गंभीरा का विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान व मानसिक जप
- लाभ
  पाचनतंत्र स्वस्थ होता है, चयापचय का संतुलन होता है,
  थाईराहड के रोग दूर होते हैं।

निष्कर्ष

मनुष्य ऊर्जा का अक्षय कोष है। उसमें चेतना है, ज्ञान है और प्रयोग करने

की क्षमता है, इसलिए वह नये अविष्कार करता है, जीवन के छिपे रहस्यों को अनावृत्त करता है। स्वस्थ समाज, स्वस्थ व्यक्तित्व के लिए वह रचनात्मक निर्माण कार्य सम्पादित करता है और विकास की अनंत संभावनाएं लेकर चलता है पर ऐसा होता तभी है जब मनुष्य अपनी शक्तियों को जागरुकता के साथ सही दिशा में संयोजित करें।

'सागरवरगंभीरा' का यह प्रयोग व्यक्तित्व निर्माण का महत्तम प्रयोग कहा जा सकता है। चारित्र विशुद्धि का यह प्रयोग चारित्रिक गुणों का उत्कर्ष करता हुआ परम समाधि का मार्ग प्रशस्त करता है।

इंग्लैण्ड की एक महिला का नाम है—बार्बराकार्टलेण्ड। सुना है बहुत ही प्रेरक और विचित्र है उसकी सफलता की कहानी। कहते हैं वह गरीब परिवार में पैदा हुई, दसवीं पास की। लेखन की रुचि जागृत हुई। उसने छह सौ पुस्तकें लिखीं, उसमें चार सौ नवलकथाएं लिखी। सफलता का एक-एक पग पार करती हुई वह एक दिन सबसे अधिक पैसा कमाने वाली महिला-लेखिका के रूप में प्रख्यात हो गई। सन् १९९५ में ब्रिटेन की महारानी द्वारा सम्मानित होने का उसे गौरव प्राप्त हुआ। उसने अपनी आत्मकथा लिखी है—आइ रीच फॉर स्टॉर्स। उसके आधार पर विद्वानों ने बार्बरा की सफलता के कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है—उसका जीवन सात्विक है। उसके पास ध्येय है, रस है, उसने 'स्व' को पहचाना है। स्व को केन्द्र बनाया है। वह कहती है—"यदि हमारा केन्द्र मजबूत, विशाल और स्पष्ट होता है तो परिधि भी विशाल बन जाती है। ऐसी स्थिति में संसार की समृद्धि और वसुधा का वैभव उसके पास मंडराने लगता है। अतः अन्तदर्शन द्वारा 'स्व' की अनुभूति करो। फलक को विशाल बनाओ। तुम और तुम्हारा जीवन अनेकों के लिए प्रेरणा स्रोत बन जायेगा।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'स्व' की अनुभूति के अनेक साधनों में लोगस्स-स्तव का भी अपना विशिष्ट स्थान है। इसमें जो मंत्राक्षर हैं वे अनंत शक्ति के स्रोत हैं क्योंकि अनंत शक्तिपुञ्ज तीर्थंकरों की स्तुति में निर्मित विशिष्ट रचना-धर्मिता के गुणों से वे निष्पन्न हैं। उन्हें चेतन करने की अपेक्षा है। प्रयोगात्मक भूमिका पर परिष्कृत होकर ही वे चेतन बन, प्राणवान बनते हैं। अतः कहा जा सकता है कि मंत्र सूक्ष्म रूप होते हैं, बीज रूप होते हैं जिससे बाह्य वस्तु-रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है तो दूसरी ओर लोकोत्तर सुख के द्वार भी खुलते हैं। इसी लोकोत्तर सिद्धि के लिए 'सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' को सफलता का सशक्त सोपान कहा जा सकता है।

संदर्भ

१. भीतर की ओर—पृ. ३३८
२. सुप्रभातम्, भाग-२, पृ./२२६
३. साधना और सिद्धि—पृ./१८
४. एसो पंच णमोक्कारो—पृ.२५
५. पर्युषण साधना—पृ./१७
६. सुप्रभातम् भाग-२, पृ./१६३
७. मंत्र एक समाधान—पृ./१६३
८. वही—पृ./६३

७. सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु

वर्तमान में कुछ ऐसी मशीने निर्मित हो गई हैं जिनके अन्दर सारे पुर्जे रहते हैं। खराबी आते ही औजार स्वतः बाहर निकलते हैं और उस पुर्जे को ठीक कर देते हैं। वैसे ही हमारी आत्मा की मशीन ठीक करने के पुर्जे हमारे ही भीतर में पड़े हैं। आत्मा के उन पुर्जों में 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'–यह एक ऐसा शक्तिशाली और विलक्षण पुर्जा है जो सर्वतोभावेन आत्मा की स्वस्थता के लिए सतर्कता पैदा करता रहता है।

चंदेसु निम्मलयरा आदि तीनों पद हमारी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक शक्तियों के विकास में निमित्त बनते हैं। साधक तीनों पद्यों का ध्यान करता हुआ चौथे चरण में सिद्ध भगवन्तों से सिद्ध सुगति प्राप्ति की अभिलाषा अभिव्यक्त करता है। 'ठाणं' में चार प्रकार की सुगति का उल्लेख है[1]–

१. सिद्ध सुगति
२. देव सुगति
३. मनुष्य सुगति
४. सुकुल में जन्म

उपरोक्त चारों सुगतियों में से तीन सुगतियों में जन्म-मरण की यात्रा रहती है पर सिद्ध सुगति की प्राप्ति के पश्चात भव-भ्रमण के अंकुर का सर्वथा अभाव हो जाता है। अतएव सिद्ध सुगति की प्राप्ति हमारे जीवन का परम ध्येय है। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' मंत्र पद सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है। अतः दृढ़ श्रद्धा, व अनुकूल पराक्रम के साथ इस मंत्र पद का जप भी हमारी जीवन यात्रा को सही दिशा की ओर संवर्धित करता हुआ हमारे चरम और उत्कृष्ट, अनुपम लक्ष्य से हमें जोड़े हुए रखता है, और एक दिन सफलता के चरम शिखर पर भी पहुँचा देता है। परन्तु यह कोई एक जन्म की साधना का परिणाम नहीं है, जन्म जन्मान्तर की साधना का परिणाम है।

सिद्धत्व हमारा स्वभाव सिद्ध अधिकार

सिद्धत्व हमारा स्वभाव सिद्ध अधिकार है, न केवल अधिकार है बल्कि स्वभाव भी है। आत्मा न मन है, न वचन है और न काया है। आत्मा सिर्फ आत्मा है, निरालम्ब है, निष्कलुष है, निर्दोष, मोहरहित, भयमुक्त व वीतराग है। क्रोध आदि आत्मा के स्वभाव नहीं आरोपित हैं।

पानी का स्वभाव उष्णता नहीं शीतलता है, खोलता हुआ पानी भी अग्नि को बुझायेगा ही, जलायेगा नहीं। जैसे जल का स्वभाव शीतलता है गरमाहट आरोपित है वैसे ही आत्मा का स्वभाव वीतरागता है, क्रोध आदि आरोपित है सांसारिकता की निशानी है।

सिद्धों का स्वरूप

सिद्ध अशरीर है। वे चैतन्य धन और केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन से संयुक्त होते हैं। साकार और अनाकार उपयोग उनका लक्षण होता है।[२] सिद्ध केवलज्ञान से संयुक्त होने से सर्वभाव गुण पर्याय को जानते हैं और अपनी अनंत केवल दृष्टि से सर्वभाव देखते हैं।[३] न मनुष्यों को ऐसा सुख होता है और न सब देवों को, जैसा सुख अव्याबाध गुण प्राप्त सिद्धों को होता है।[४] जैसे कोई म्लेच्छ नगर की अनेक विध विशेषताओं को देख चुकने पर भी उपमा न मिलने से उनका वर्णन नहीं कर सकता, उसी तरह सिद्धों का सुख अनुपम होता है, उनकी तुलना नहीं हो सकती।[५] सर्व कार्य सिद्ध होने से वे सिद्ध हैं। सर्व तत्त्व के पारगामी होने से वे बुद्ध हैं। संसार समुद्र का पार पाने से वे पारंगत हैं। हमेशा सिद्ध रहेंगे इस दृष्टि से वे परम्परागत हैं।[६]

सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु

उपरोक्त गुणों से युक्त अनंत सिद्ध भगवन्तों का ध्यान 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'—इस चतुर्थ चरण के साथ ज्ञान-केन्द्र पर श्वेत रंग में किया जाता है। वैसे यह प्रयोग केवल 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'—इस मंत्र पद का करें तो दर्शन-केन्द्र पर अरुण रंग में भी किया जाता है। जब इस मंत्र पद को ''चंदेसु निम्मलयरा... दिसंतु''—इस पूरे पद्य के साथ करें तो ज्ञान-केन्द्र पर श्वेत रंग में किया जाता है। यहां पर इस केन्द्र में ऐसा अनुभव होना चाहिए कि परम आत्मा के साथ मेरा संपर्क स्थापित हो रहा है। योग की भाषा में इस केन्द्र को सहस्रार चक्र कहने का कारण भी यही है कि यहां ज्ञान के सहस्रों स्रोत खोले जा सकते हैं।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि हेतु एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग का उल्लेख किया है—ॐ ह्रीं अर्हं नमः।[७]

विधि

मंत्र	केन्द्र	जप संख्या	लाभ
ॐ	प्राण-केन्द्र	१००० जप	मिर्गी के दौरे, उच्च रक्तचाप जैसी समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।
ह्रीं	दर्शन-केन्द्र	१००० जप	शक्तिशाली मंत्र है। रक्षाकवच है। इस प्रयोग से बाहर के प्रभाव का असर कम हो जाता है।
अर्हं	ज्योति केन्द्र	१००० जप	अर्हताओं को विकसित करने का मंत्र
नमः	ज्ञान-केन्द्र	१००० जप	अर्हताओं को विकसित करने का मंत्र

जप व ध्यान हमारे अन्तर की ऊर्जा को संग्रहित करता है। मोबाइल फोन को प्लग में लगाने से बेटरी चार्ज हो जाती है वैसे ही ध्यान, योग, समिति, गुप्ति आदि आराधनाओं के द्वारा भीतर की शक्तियां संग्रहित होने लगती हैं। अर्हत् जप व अर्हत् का ध्यान करने से आत्मा के साथ संपर्क स्थापित होता है। इस संपर्क से अशुभ लेश्याएं शुभ लेश्या में बदल जाती हैं।

वर्तमान संदर्भ में हम देख रहे हैं कि कुछ ऐसी मशीने आ गई, रोबोट खराब हो गया तो आपको उसे ठीक करवाने के लिए मैकेनिक को बुलवाने की जरूरत नहीं, उसी के अन्दर सारे पुर्जे रहते हैं, खराबी आते ही औजार स्वतः बाहर निकलते हैं और उस पुर्जे को ठीक कर देते हैं वैसे ही हमारी आत्मा की मशीन ठीक करने के पुर्जे, हमारे ही भीतर में पड़े हैं। आत्मा के उन पुर्जों में 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' यह एक ऐसा शक्तिशाली और विलक्षण पुर्जा है। जो सर्वत्तोभावेन आत्मा की स्वस्थता के लिए सतर्कता पैदा करता रहता है।

हमारे मस्तिष्क में ग्रे रंग–धूसर रंग का एक द्रव्य पदार्थ है, वह समूचे ज्ञान का संवाहक है। पृष्ठरज्जू में भी यही पदार्थ है। धूसर तथा ज्योतिर्मय श्वेतवर्ण के साथ ज्ञान-केन्द्र पर इस मंत्र पद का ध्यान करने से ज्ञान की सुप्त शक्तियां जागृत होती हैं एवं चेतना का जागरण होता है, इसके साथ-साथ कुछ अन्य आत्म शक्तियों का जागरण भी होता है–

१. मन, वचन व काया की गुप्ति का विशिष्ट होना
२. चित्त का सदैव प्रसन्न रहना
३. आर्त्त, रौद्र ध्यान का प्रसंग न आना
४. धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान की धारा का सतत् प्रवाहित रहना।

तनाव मुक्ति, मन की स्थिरता और कलह निवारणार्थ ज्ञान-केन्द्र पर श्वेत वर्ण की धारणा के साथ 'ॐ' का जप भी किया जाता है।

स्मृति विकास व ज्ञान तंतुओं की सक्रियता के लिए इस केन्द्र पर पीले रंग की धारणा के साथ 'ॐ' का जप अथवा ध्यान किया जाता है।

अद्भुत ज्ञान शक्ति

सन् १९४३ में पीटर हरकांस को एक दिवार पर पुताई करते हुए सीढ़ी से गिरने पर अलौकिक ज्ञान-शक्ति मिली जिससे वह भूत और भविष्य के बारे में काफी कुछ बता सकता था। गिरने पर जब उसे अस्पताल में लाया गया और वह कुछ स्वस्थ हो गया, तब उसने साथ के बिस्तर पर लेटे रोगी की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा—"अरे तुम्हारी मां तो मरणासन्न है और तुम यहां हो। तुम्हें तुरंत अपनी मां के पास जाना चाहिए। इसी अस्पताल में दूसरे एक मरीज को यह बात बताकर उसने सबको आश्चर्य चकित कर डाला कि उसने सात दिन पूर्व एक दुकान से एक अटैची की चोरी की थी, जिसमें अमुक-अमुक वस्तुएं थीं। पहले तो डॉक्टरों ने उसे मजाक समझा लेकिन जाँच करने पर सारी बातें सच निकलीं तो डॉक्टर आश्चर्य चकित रह गये।

पीटर हरकांस ने प्राप्त दिव्य ज्ञान शक्ति से लोगों की खोई हुई सम्पत्तियों एवं आदमियों के बारे में बताया। वह किसी मशीन को छूकर ही बता सकता था कि इस मशीन के किस पुर्जे को बदलना है, लेकिन सबसे अधिक प्रभावशाली उसका कार्य अपराधों का सुराग बताने का था। उसने अपहृत बच्चों, चोरों के गिरोहों और हत्याकाण्डों के अभियुक्तों के बारे में सही जानकारी दी। बाद में उसने अमेरिका में कई जगहों पर तैल तथा सोने की खानों की सही जानकारी देकर वैज्ञानिकों को भी चकित कर दिया।[८]

उपरोक्त घटना प्रसंग से यह तथ्य निकलता है कि कभी-कभी अचानक किसी चैतन्य-केन्द्र पर चोट होने से उसका जागरण हो जाता है और व्यक्ति भूत, भविष्य तथा वर्तमान का ज्ञाता बन जाता है, उसकी अतीन्द्रिय क्षमता विकसित हो जाती है। चैतन्य-केन्द्र हमारे शरीर में सन्निहित विविध प्रकार की शक्तियों के अद्भुत केन्द्र हैं। उन केन्द्रों पर अर्हत् के ध्यान का, परमात्मा के ध्यान का सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि हमारी रासायनिक और विद्युत चुम्बकीय दोनों प्रकार की प्रणालियों में परिवर्तन आता है। उनके शांत परमाणुओं का ध्यान करने से हमारे विद्युत तंत्र में उभरती अशुद्ध तरंगें शुद्धता में तरंगित हो जाती हैं।

इसी प्रकार तप वृद्धि हेतु वर्धमान महावीर व आदिनाथ भगवान का ध्यान, शांति के लिए अर्हत् शांतिनाथ का ध्यान, ब्रह्मचर्य पुष्टि के लिए नेमिनाथ का ध्यान तथा विघ्न निवारणार्थ अर्हत् पार्श्व का ध्यान किया जाता है। योग की क्रिया

है कि यदि शारीरिक शक्ति को बढ़ाना है तो बाहुबली व हनुमान की पराक्रमशीलता का ध्यान करो, शरीर के भीतर शक्ति का संचार हो जायेगा। वैनतेय या गरुड़ का ध्यान करो गति में तीव्रता आ जायेगी। जैन दर्शन की भक्ति गुण संक्रमण की भक्ति है। हम वीतराग का ध्यान करें, वीतरागता के गुण हमारे में संक्रमित होने शुरू हो जायेंगे। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अपने विजातीय तत्त्वों को दूर करने के लिए भक्ति बहुत अच्छा आलंबन है। इससे आत्मा का बहुत शोधन हो जाता है। आत्मा का जितना शोधन होता है उतनी अतीन्द्रिय ज्ञान की चेतना भी विकसित होती है।

अध्यात्म विकास का अलौकिक प्रयोग

आध्यात्मिक विकास के लिए चंदेसु निम्मलयरा इस अंतिम पद के चारों चरणों का यदि कोई जप करे तो श्वेत वर्ण की माला से अपने-अपने चैतन्य-केन्द्रों पर मंत्रोच्चारण के साथ मन केन्द्रित करते हुए इक्कीस दिन तक प्रतिदिन नियमित तन्मयता से पांच माला जपे। अध्यात्म विकास का यह एक अलौकिक प्रयोग है। विज्ञानसिद्ध खोजो ने भी यह प्रमाणित किया है कि हमारे पैर के नखों में ५० प्रकार के रसायन हैं। हमारे एक बाल में सैंकड़ों प्रकार के रसायन हैं। एक बाल पूरे व्यक्तित्व की व्याख्या करने में समर्थ है। इसी रासायनिक परिवर्तन की प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में लोगस्स का यह अंतिम पद्य व्यक्तित्व निर्माण और जीवन की सफलता का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मंत्र पद है।

घटना प्रसंग समणी अमितप्रज्ञा के जीवन का है। जलगांव मर्यादा महोत्सव के समय आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के निर्देशानुसार मर्यादा-महोत्सव से १५ दिन पूर्व लगभग ११-१२ माह की लंबी यात्रा के लिए समणी अमितप्रज्ञा का समणी मंगलप्रज्ञा के साथ अमेरिका न्यूजर्सी जाना था। प्रथम बार विदेश की इतनी लंबी यात्रा होने के कारण जैसे-जैसे जाने का समय निकट आ रहा था वैसे-वैसे उनके मन में उदासी आ रही थी। एक बार उन्होंने आचार्य प्रवर से अपनी मनःस्थिति निवेदित की।

आचार्य प्रवर ने स्नेह वर्षा करते हुए कहा—यह चिंतन करो साधना हमारा मुख्य लक्ष्य है और दूसरा लक्ष्य है धर्मसंघ की सेवा। इसके लिए जहाँ कहीं भी जाएं प्रसन्नता से काम करें और प्रसन्नता को भीतर से उत्पन्न करें। संकल्प करें यह भी साधना का प्रयोग है। अपने संबोध को आगे बढ़ाते हुए पूज्य प्रवर ने कहा—प्रतिदिन 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' का कम से कम २१ बार ध्यान करो। 'तित्थयरा मे पसीयंतु' का भी प्रयोग करो। इससे कायिक शक्ति बढ़ेगी और

सफलता मिलेगी। गुरुदेव द्वारा प्रदत्त सूत्रों से समणीजी को सफलता मिली और उनका साहस भी बढ़ा।

इसी संदर्भ में ध्वनि के प्रभाव की विलक्षणता भी अद्‌भुत है। 'हाँ' की ध्वनि से फेफड़े की तकलीफ ठीक होती है। सीने पर इसका उचित प्रभाव पड़ता है। 'हीं' ध्वनि दर्शन-केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करने से दृष्टि शुद्धि और मुखमंडल प्रभायुक्त होता है। 'हं' ध्वनि से लीवर की स्वस्थता बढ़ती है। 'हैं' ध्वनि कण्ठ को स्वस्थ रखती है। 'हः' की ध्वनि सिरदर्द को दूर करती है तथा स्मरण शक्ति को भी बढ़ाती है।[६] इसी प्रकार उद्दण्डता निवारण के लिए शशांकासन, व्यसन मुक्ति के लिए अप्रमाद केन्द्र पर ध्यान, भय मुक्ति के लिए आनंद-केन्द्र पर ध्यान, ज्यादा कटुभाषी के लिए कंठकूप पर ध्यान तथा क्रोध शांति के लिए शशांकाआसन—ये योग के, रासायनिक परिवर्तन के अनूठे रहस्य हैं।

नवरात्र आध्यात्मिक अनुष्ठान

नवरात्र अनुष्ठान का समय सौर विकिरण की दृष्टि से साधना के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। मनुष्य को इस समय का लाभ उठाते हुए अपनी शक्ति का विकास करना चाहिए पर शक्ति विकास दूसरों की भलाई के लिए हो, किसी के अनिष्ट के लिए नहीं।

नवरात्र अनुष्ठान में दुर्गा को इष्ट मानने वाले हों अथवा चाहे वे अर्हत् को इष्ट मानने वाले हों, सभी व्यक्ति जीवन में नौ शक्तियों के विकास की आराधना करते हैं, वे शक्तियां हैं—

१. श्री संपन्न बनना
२. लज्जा संपन्नता अर्थात् आत्मानुशासन का विकास
३. बुद्धि का विकास
४. धैर्य की शक्ति का विकास
५. शक्ति का विकास
६. शांति का विकास
७. आनंद का विकास
८. ज्योतिर्मय जीवन
९. जीवन में पवित्रता का विकास

नौ दिवसीय आध्यात्मिक अनुष्ठान का यह उपक्रम आत्मशुद्धि और ऊर्जा के विकास का माध्यम बने। इस दृष्टि से आश्विन शुक्ला एकम् से प्रारंभ कर निरन्तर नौ दिनों तक यह प्रयोग किया जाये। मंत्र-कोविद-आचार्य, आचार्य श्री

महाप्रज्ञजी ने लोगस्स के अन्तिम पद्य की निम्नोक्त विधि को नवरात्र आध्यात्मिक अनुष्ठान के नाम से निर्मित किया है जो अत्यन्त ही शक्तिशाली और तेजस्वी प्रयोग है–

प्रयोग विधि[१०]

- **चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।**
  सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥
  (पद्य का पाठ पांच बार)
- **चंदेसु निम्मलयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।**
  (तेरह बार)
- **आइच्चेसु अहियं पयासयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।**
  (तेरह बार)
- **सागर वर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।**
  (तेरह बार)
- **आरोग्गबोहि लाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु ।**
  (तेरह बार)
- **चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।**
  सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥
- **ॐ ह्रीं क्लीं ब्लूं धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।**
  देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

  जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियई रसं ।
  न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥२॥

  एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
  विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

  वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोई उवहम्मई ।
  अहागड़ेसु रीयंति, पुप्फेसु भमरा जहा ॥४॥

  महुकारसमाबुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
  नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ॥५॥
  (उपरोक्त पांचों पद्यों को युगपत् ५ बार बोलें)

मुमुक्षु साधक चिन्मय लक्ष्य के दर्पण में अपनी कमजोरियों को भी झांकता है और विशिष्टताओं को भी। आत्मा की शुद्ध अर्हताओं का प्रकटीकरण भीतरी

पुरुषार्थ से ही संभव है। साधना का उद्देश्य है अहं भाव को विसर्जित कर अर्हं भाव को प्रकट करना। लोगस्स-स्तव आत्मा रूपी तिजोरी के ताले को खोलने के लिए चाबी के समान है अर्थात् यह अहं भाव को विगलित कर अर्हं भाव को प्रकट करने का साधन है।

निष्कर्ष

लोगस्स के इस अंतिम पद्य की आराधना से साधक किसी परकीय शक्ति को नमन नहीं करता, उसका सहारा नहीं लेता वह स्वयं ही प्रमुख बनकर प्रभु की पूजा करता है। प्रत्येक आत्मा में अनंत-ज्ञान, अनंत-दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य (शक्ति)—यह अनंत चतुष्ट्य विद्यमान है। "चंदेसु...दिसंतु"। इस पद्य के ध्यान अथवा जप से उत्पन्न नाद की तरंगों से अंतरंग में प्रच्छन्न आत्मा की इस अमोघ शक्ति को जगाना होता है। उस स्वयं की शक्ति से स्वयं को अनभिज्ञ बनाये रखने का प्रमुख कारण है अहं का उदय। मदमत्त भक्त का चित्त सदा परकीय शक्ति की शरण को स्वीकारता है। मदों के अभाव में शुद्ध साधक/भक्त अपनी आत्मा से साक्षात्कार करता है।

अहंकार का पुरस्कर्ता है—मोह। मोह का परिणाम है राग-द्वेष। राग-द्वेष को चिरंजीवी करते हैं—लोभ, माया, मान और क्रोध। इनके प्रवेश से भक्त का अन्तरंग जागतिक क्रिया-कलापों में सक्रिय हो जाता है। उसका आध्यात्मिक रूप प्रच्छन्न हो जाता है। विनय के प्रयोग से अहंकार का विसर्जन होता है। इस विनय का प्रयोक्ता होता है भक्त। लोगस्स-स्तव में विनय का माहात्म्य उल्लेखनीय है। अपने आपको अपने आप में ले जाने की विशेष प्रक्रिया का मूलाधार है—विनय।

लोगस्स स्तव में साधक तीर्थंकरों, विहरमानों व अनंत सिद्धों के स्वरूप की स्तुति करता हुआ स्वयं की सिद्धि की कामना करता है। भक्ति की प्रक्रिया में विनय अथवा नमन की मुद्रा में शरीर के उत्तमांग मुखर हो जाते हैं जिनके द्वार से ऊर्जा का जागरण होता है और तब अहंकार का पुञ्ज निस्तेज हो जाता है। इस प्रयोग से मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है। मानसिक प्रसन्नता धीरे-धीरे आनंद का रूप ले लेती है। आनंद का ही दूसरा नाम है परमात्मा अर्थात् आत्मा ही एक दिन परमात्मा बन जाता है।

ज्योति-केन्द्र, दर्शन-केन्द्र, विशुद्धि-केन्द्र व ज्ञान-केन्द्र पर लोगस्स के अंतिम पद्य का सविधि जप अथवा ध्यान करने से एकाग्रता बढ़ती है। एकाग्रता वृद्धि से चित्त ध्येय में स्थिर बनता है। चित्त के ध्येय में स्थिर होने से जागरूकता बढ़ती है। जागरूक मन संयम में प्रतिष्ठ होकर निर्जरा तथा संवर से जुड़ता है। यही लक्ष्य तक पहुँचने की प्रशस्त भूमिका है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जीवन का उद्देश्य सिद्ध स्वरूप में अवस्थित होना है। अतः सिद्ध स्वरूप एवं सिद्ध भगवन्तों का स्मरण, जप व ध्यान करने से परम आत्म शांति का अनुभव होता है। सिद्धत्व आत्मोन्नति तथा पवित्रता का सर्वोत्कृष्ट रूप है। णमो सिद्धाणं, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु—ये अत्यन्त शक्तिशाली और प्राणवान मंत्रपद है। गणाधिपति गुरुदेव के ये सिद्ध मंत्र थे। कभी किसी शोक संतप्त परिवार को संदेश देते समय भी वे "ॐ भिक्षु", "ॐ भिक्षु जय भिक्षु", 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु', 'ॐ अ सि आ उ सा नमः' आदि मंत्रों के जप का निर्देश देते रहते थे। निस्संदेह सिद्ध भगवन्तों की उपासना से परमानंद, परमसुख तथा परम समृद्धि अर्थात् परम समाधि की प्राप्ति होती है।

संदर्भ

१. ठाणं—४/१४६
२. आवश्यक निर्युक्ति—५६६, औपपातिक सूत्र—१७८
३. वही—६००, वही—१७६
४. वही—६०२, वही—१८०
५. वही—६०५, ६०६, वही—१८३, १८४
६. वही—६०६, औपपातिक—१८७, भगवती २/१६, १७, वृत्ति पत्र ११२, भगवती जोड़ खण्ड १, पृ./१६४
७. महाप्रज्ञ ने कहा—भाग ६, पृ./३६
८. हिंदुस्तान—२-११-७३ (शशिकांत शर्मा)
९. जीवन विज्ञान
१०. गणपति के स्वर, पृ./६७, साधना के श्लाका पुरुष गुरुदेव तुलसी, पृ./१३१, १३३
११. साधना के श्लाका पुरुष : गुरुदेव तुलसी—पृ./५२, ५३

८. लोगस्स–आध्यात्मिक पदाभिषेक

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी एक ऐसे महातपस्वी, महामनस्वी, महायशस्वी आचार्य थे जिनकी वाणी में ओज और आँखों में अनंत की खोज थी। उनकी पारदर्शी प्रज्ञा ने लोगस्स के शक्तिशाली मंत्रों का आध्यात्मिक पदाभिषेक कर अतीन्द्रिय चेतना संपन्न आचार्य महाप्रज्ञ में अपनी संपूर्ण ऊर्जा को संग्रहित व प्रेषित कर उनकी प्रज्ञा के द्वार खोल दिये। संघ को आचार्य महाश्रमण जैसे महातपस्वी, महासाधक, महाप्रतापी आचार्य की उपलब्धि भी उनकी पैनी दृष्टि का सुपरिणाम है।

भारतीय परम्परा में अभिषेक विधि का प्रचलन बहुत पुराना रहा है, फिर चाहे वह लौकिक परम्परा रही हो या अलौकिक परम्परा। शीर्षस्थ पद पर प्रतिष्ठित किये जाने वाले व्यक्ति के लिए अथवा शीर्षस्थ पुरुष के लिए विधिपूर्वक की जाने वाली क्रिया अभिषेक कहलाती है। प्राचीन समय में जब राजाओं, महाराजाओं के राज्याभिषेक का मांगलिक अवसर होता तो उस समय के रीति-रिवाजों के अनुसार अनेक तीर्थों तथा पवित्र नदियों का पानी मंगल कलशों में भरकर लाया जाता, उस पानी को विविध प्रकार से सुगंधित द्रव्यों से सुवासित किया जाता और फिर राज सिंहासन पर बैठने वाले राजा का उस पानी से मंत्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक किया जाता यह विधि अभिषेक कहलाती थी।

जैन परम्परा में इस पद्धति का प्रकारान्तर से निर्वहन होता रहा है। जब कभी वर्तमान आचार्य के सामने अपने उत्तराधिकारी को आचार्य बनाने का प्रसंग आता है तब वे अपने शिष्य को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए उनका विधि पूर्वक पदाभिषेक करते हैं।

'अभिषेक'–शब्दार्थ[1]

'अभिषेक' शब्द का अर्थ अभिधा और लक्षणा–दोनों प्रकार से किया जा सकता है। 'अभिधा' वह शब्द शक्ति है जो केवल वाच्यार्थ या अक्षरार्थ को

अभिव्यक्त करती है। 'लक्षणा' शब्द की वह शक्ति है जो अभिप्रेत अर्थ का बोध कराती है और सामान्य अर्थ से भिन्न विशेष अर्थ का वाचक बनती है।

सामान्यतः अभिषेक शब्द का अर्थ 'अभितः सेचनम्' अर्थात् सब ओर से सिंचन करना है। प्रस्तुत शब्द अभि उपसर्ग पूर्वक 'सिच्' धातु से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। जैन परम्परा में यह शब्द प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ नये परिवेश और नई अभिधा में भी प्रयुक्त हुआ है। इसका वहां अर्थ क्रिया परक न होकर व्यक्ति परक किया गया है। इसलिए यह शब्द जैन परम्परा में विशेष अर्थ का वाचक है।

आगमों में अभिषेक का अर्थ

१. जैन आगमों के अनुसार सूत्रागम, अर्थागम और तदुभयागम से परिसंपन्न आचार्य पद के योग्य होता है वह मुनि अभिषेक कहलाता है।
२. जो मुनि आचार्य पद पर अभिषिक्त होता है उसे अभिषेक कहा जाता है।
३. जो श्रमणी आचार्य स्थानीय प्रवर्तिनी-पद के योग्य होती है उसे अभिषेक कहा जाता है।

प्रस्तुत अर्थों के संदर्भ में यह कहना भी असंगत नहीं है कि व्यक्ति को अभिषेक मानकर उपचार से उसके लिए किये जाने वाले क्रिया-कलापों को भी अभिषेक कहा जा सकता है।

आचार्य पदाभिषेक : प्राचीन विधि[२]

प्राचीन परम्परा में आचार्य पद पर अभिषिक्त होने वाले शिष्य को अनेक परीक्षणों से गुजरना होता था। समय-समय पर आचार्य उसके बुद्धि-बल, संकल्प-बल, मनोबल, साहस, धैर्य, विश्वसनीयता, संघनिष्ठा, समर्पण आदि का विविध युक्तियों से परीक्षण करते रहते थे। जो शिष्य इस कसौटी में खरा उतर जाता, वह आचार्य के हृदय में स्थान बना लेता। आचार्य उसे सब प्रकार से योग्य जानकर प्रशस्त तिथि, प्रशस्त नक्षत्र, प्रशस्त मुहूर्त्त आदि देखकर प्रशस्त क्षेत्र में आचार्य–पदाभिषेक करने का निर्णय लेते। आचार्य प्राभातिक काल में स्वाध्याय आदि करके चतुर्विध धर्मसंघ के सामने इस विधि को संपन्न करते हैं।

सर्वप्रथम शिष्य को २७ श्वासोच्छ्वास (एक लोगस्स) का कायोत्सर्ग कराते हैं फिर आचार्य स्वयं अस्खलित वाणी से नन्दी सूत्र का वाचन करते हैं। शिष्य हाथ जोड़कर उसे सुनता है। उसका संवेग निरन्तर बढ़ता जाता है। फिर वह कहता है–भंते! मैं आपका अनुशासन सुनना चाहता हूँ। आचार्य उसको अनुशासन

देते हैं। वे उसे सात बार कायोत्सर्ग कराते हैं अर्थात् लोगस्स का ध्यान कराते हैं। फिर वह शिष्य गुरु द्वारा समर्पित निषद्यायुक्त होकर गुरु को तीन बार प्रदक्षिणा सहित वंदना करता है और गुरु के दायीं ओर उच्चासन पर निषद्या कर बैठ जाता है। तब गुरु शुभ लग्न और शुभ बेला में गुरु परम्परा से आगत मंत्रपदों का तीन बार उच्चारण करते हैं। तदन्तर गुरु तीन मुष्ठि अक्षत शिष्य के हाथ में देते हैं। शिष्य उन्हें विनम्रता से ग्रहण करता है। गुरु उसका नामकरण कर आसन से उठ जाते हैं। आचार्य पदाभिषेक शिष्य अपने आसन पर ही बैठा रहता हैं। गुरु समस्त संघ के साथ उनको वंदन करते हैं। यह विधि तुल्य गुणों के ख्यापनार्थ की जाती है। फिर गुरु उन्हें व्याख्यान देने के लिए कहते हैं। अपने आसन पर स्थित वे अभिनव आचार्य परिषद के अनुरूप नंदी आदि का व्याख्यान करते हैं। व्याख्यान की संपन्नता पर समस्त संघ उनको वंदना करता है। तब वे अभिनव आचार्य अपने आसन से उठ जाते हैं। गुरु उस आसन पर बैठकर अनुशासन देते हुए कहते हैं—शिष्य तुम भाग्यशाली हो। आचार्य का यह गौरवशाली पद तुमने पाया है। प्राचीनकाल में गौतम सुधर्मा आदि विशिष्ट मुनियों ने इस पद का गौरव बढ़ाया है। भद्र! धन्य व्यक्ति ही इसे प्राप्त कर सकते हैं। जो मुनि सांसारिक लीलाओं से छुटकारा पाना चाहते हैं, वे इस शासन की शरण में आते हैं। तुम उन सबकी सारणा-वारणा करना और उन्हें संसार सागर से पार लगा देना। तुम यावज्जीवन जिनेश्वर देव की आज्ञा का पालन करते रहना और अपने आश्रित चतुर्विध धर्मसंघ को संसार से पार लगाते रहना।

इस अनुशिष्टि के पश्चात अभिनव आचार्य गुरु को वंदना करते हैं और विभिन्न विधियां संपन्न कर सात बार खमासमणो पाठ का उच्चारण कर गुरु के पास बैठ जाते हैं। साध्वियां नये आचार्य को वंदना करती हैं। अभिनव आचार्य संघ को शिक्षा देते हैं।

लोगस्स-आध्यात्मिक पदाभिषेक

यद्यपि शब्दों की शक्ति असीम है पर वे असीम भाव बोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपरिवर्तनशील अक्षर तत्त्व का साक्षात्कार करने के लिए अन्तरात्मा का जागरण आवश्यक है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने इसकी तुलना मोती बनने की प्रक्रिया से की है। प्रचलित मान्यतानुसार घोंघा स्वाति नक्षत्र के उदय होने तक प्रतीक्षा करता है। यदि उस समय वर्षा होती है तो घोंघा अपनी सीप को खोलकर उसका जल ग्रहण कर लेता है। फिर वह समुद्रतल में गोता लगाकर महिनों तक वहां पड़ा रहता है, जब तक वह जल-बिंदु सुन्दर मोती में परिणत नहीं हो जाता

है। इसी प्रकार भक्त का हृदय सत्य के प्रति उन्मुक्त होना चाहिए और गुरु से आध्यात्मिक उपदेश प्राप्त करने के बाद एक निष्ठ उत्साह के साथ उनकी तब तक आराधना करनी चाहिए जब तक आध्यात्मिक अनुभूति रूप मोती का निर्माण नहीं हो जाता। ब्रह्मज्ञ गुरु आध्यात्मिक दीक्षा द्वारा शिष्य में ऐसी चेतना का जागरण करते हैं। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने लोगस्स में अन्तर्निहित मंत्राक्षर पद्यों द्वारा आचार्य महाप्रज्ञ का आध्यात्मिक पदाभिषेक कर उनमें अपने ऊर्जा स्पन्दनों का संचार किया। तेरापंथ की आचार्य परम्परा में यह पहला प्रसंग था। जैन परम्परा में भी ऐसा प्रसंग जानने को नहीं मिला कि एक समर्थ आचार्य ने अपने आचार्य पद का विसर्जन कर अपने शिष्य में आचार्य पद की प्रतिष्ठा की हो। अतएव गुरुदेव श्री तुलसी ने यह आध्यात्मिक अभिषेक तिलक कर एक अभिनव, अलौकिक परम्परा का सृजन किया। इस आध्यात्मिक अभिषेक तिलक के तीन आयाम थे। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी वंदन मुद्रा में सहज शांत स्थितप्रज्ञ भाव में बैठ गये।

१. गुरुदेव ने अपना अंगुष्ठ श्री महाप्रज्ञ के दर्शन-केन्द्र (दोनों भृकुटियों के मध्य) पर टिकाया और 'आइच्चेसु अहियं पयासयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' मंत्र का तीन बार उच्चारण किया।
२. गुरुदेव श्री तुलसी ने उसी शक्तिशाली अंगुष्ठ को ज्योति-केन्द्र (ललाट का मध्य भाग) पर रखा और 'चंदेसु निम्मलयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' मंत्र को तीन बार दोहराया।
३. तीसरी आवृत्ति में गुरुदेव तुलसी ने अपना अंगुष्ठ श्री महाप्रज्ञजी के शांति-केन्द्र (मस्तिष्क का अग्र भाग) पर रखा और 'सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' का पाठ तीन बार सम्मुचारित किया।

आध्यात्मिक अभिषेक के साथ गुरुदेव तुलसी ने अपना वरदहस्त श्री महाप्रज्ञ के मस्तक पर टिकाया और 'आरोग्य बोहि लाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु' तीन बार मंत्रोच्चारण किया। उसके बाद शरण सूत्र के मांगलिक उच्चारण के साथ आध्यात्मिक अभिषेक तिलक अनुष्ठान संपन्न हुआ।[3]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी एक ऐसे महामनस्वी, महातपस्वी, महायशस्वी आचार्य थे जिनकी वाणी में ओज और आँखों में अनंत की खोज थी। उनकी पारदर्शी प्रज्ञा ने लोगस्स के शक्तिशाली मंत्रों का आध्यात्मिक पदाभिषेक कर अतीन्द्रिय चेतना संपन्न आचार्य महाप्रज्ञ में अपनी

संपूर्ण ऊर्जा को संग्रहित व संप्रेषित कर उनकी प्रज्ञा के द्वार खोल दिये। संघ को आचार्यश्री महाश्रमणजी जैसे महातपस्वी, महासाधक, महाप्रतापी आचार्य की उपलब्धि भी उनकी पैनी दृष्टि का ही सुपरिणाम है।

निश्चय ही वे एक मंत्र-कोविद आचार्य थे। लोगस्स आदि कई मंत्रों की उन्हें सिद्धि प्राप्त थी। समय-समय पर संघ की सारणा-वारणा में भी उन्होंने अपनी इस विद्या का उपयोग किया। उनकी आध्यात्मिक संपदा अकूत थी। उन्होंने आचार्य श्री महाप्रज्ञजी और आचार्य श्री महाश्रमणजी को भी इस विधा में पारंगत किया। इसकी पुष्टि में गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी का एक पत्र यहां उधृत किया जा रहा है[४]—

महाश्रमण शिष्य मुदित
सुखपृच्छा!

तुम्हें महाप्रज्ञ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला है। अपना दायित्व जागरुकता के साथ निभाना। उनकी केवल उपासना ही नहीं करनी है, उनसे कुछ उपलब्धियां भी हासिल करनी हैं। तुम्हें महाप्रज्ञ के पास ज्ञान, ध्यान और कुछ मंत्र पद आदि की विधियां हासिल करने का सलक्ष्य प्रयास करना चाहिए। ऐसा करना तुम्हारे भविष्य के लिए ही नहीं, संघहित में भी उपयोगी होगा।

गणाधिपति तुलसी

सारांश में इतना ही कहा जा सकता है कि लोगस्स एक अपराजित मंत्र है क्योंकि अन्य किसी भी मंत्र के द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत (अवरुद्ध) नहीं होती, इसमें असीम सामर्थ्य निहित है। इसकी साधना सर्वकाल एवं सर्वदृष्टि से मंगलकारी, कल्याणकारी, शुभंकर एवं सर्व सिद्धिदायक है।

संदर्भ

१. जैन भारती, फरवरी १९९५, पृ./६५-६६ ┐
२. वही, पृ./६८-६९ ──────────┘ मुनिश्री राजेन्द्र कुमारजी के लेख से उधृत।
३. महात्मा महाप्रज्ञ—पृ./१४१
४. साधना के श्लाका पुरुष गुरुदेव तुलसी—पृ./

६. लोगस्स और कायोत्सर्ग

यात्रा अथवा किसी नये कार्य के प्रारंभ में नमस्कार महामंत्र अथवा लोगस्स का कायोत्सर्ग करना मंगलदायक माना गया है। तीन, नौ या इक्कीस नमस्कार महामंत्र का कायोत्सर्ग किया जा सकता है। कायोत्सर्ग कर कार्य करने चलें और यदि अपशकुन हो जाये तो दूसरी बार वहीं पर नौ नवकार का कायोत्सर्ग कर आगे चलें। फिर अपशकुन हो जाये तो वहीं पर इक्कीस नवकार का कायोत्सर्ग कर चलना चाहिए। तीसरी बार भी यदि बाधा आ जाए तो सोचना चाहिए इस काम को करना हितकर नहीं है। उसे उस समय छोड़ देना, चाहिए।

भारतीय साहित्य में एक धार्मिक व्यक्ति को वीर योद्धा माना जाता है क्योंकि जितनी शक्ति एक सैनिक को युद्धस्थल में चाहिए उससे अधिक शक्ति एक आध्यात्मिक योद्धा में चाहिए। वह रण-प्रांगण में नहीं, अपने आप से लड़ता है तथा इंद्रिय, मन व इच्छाओं पर विजय प्राप्त करता है। इस आत्म समरांगण की विजय में भी पूरी शक्ति चाहिए। जीवन की इस लड़ाई में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जो ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करता है। साधना के क्षेत्र में कोरी एकाग्रता ही पर्याप्त नहीं होती उसके साथ मन की निर्मलता भी आवश्यक है क्योंकि मन की निर्मलता से ही शक्ति बढ़ती है।

आगम और कायोत्सर्ग

चेतना में अनेक प्रकार की शक्तियां हैं—ज्ञान की शक्ति, पवित्रता की शक्ति और आत्मा की शक्ति। इन शक्तियों को जागृत करने की प्रेक्षाध्यान साधना पद्धति में प्रमुख रूप से आठ इकाइयाँ हैं[१]।

१. कायोत्सर्ग
२. अन्तर्यात्रा
३. श्वास प्रेक्षा

४. शरीर प्रेक्षा
५. चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा
६. लेश्या ध्यान
७. भावना
८. अनुप्रेक्षा

उपरोक्त आठ इकाईयों में कायोत्सर्ग को प्रथम स्थान पर रखने का प्रमुख प्रयोजन यही माना गया है कि इसके द्वारा ध्यान की पृष्ठभूमि निर्मित होती है। जैन साधना पद्धति का आदि और अंतिम बिंदु है कायोत्सर्ग।[२] भगवान महावीर का शरीर पर इतना अनुशासन था कि वे सोलह दिन-रात तक खड़े-खड़े ध्यान कर लेते थे।[३] भगवान ऋषभ और बाहुबली ने एक वर्ष तक खड़े-खड़े कायोत्सर्ग किया।[४] आगम में एक मुनि के लिए बार-बार कायोत्सर्ग करने का विधान है।[५] गमनागमन के पश्चात् मुनि ईर्यापथिक (प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग) किये बिना कुछ भी न करे।[६] मुनि भिक्षा से लौटकर स्थान पर आए तो कायोत्सर्ग करें। शौच से निवृत्त होकर स्थान पर आने के पश्चात् कायोत्सर्ग करे। प्रतिलेखन के पश्चात् और प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग का विधान है। वाचना, स्वाध्याय और ध्यान की क्रियाओं में कायोत्सर्ग करना अनिवार्य है। यह कायोत्सर्ग लोगस्स अथवा नमस्कार महामंत्र का किया जाता है। ध्यान के बाद लोगस्स का पाठ बोलना—यह विधान आवश्यक, उत्तराध्ययन[७] एवं दसवैकालिक[८] में उपलब्ध होता है पर ध्यान में लोगस्स का पाठ बोलना श्वासोच्छ्वास की संख्या आदि के आधार पर बहुश्रुत आचार्यों द्वारा निर्धारित किया गया प्रतीत होता है। कायोत्सर्ग में स्थित मुनि के कर्म क्षय होते हैं इसलिए गमनागमन, विहार आदि के पश्चात बार-बार कायोत्सर्ग करना चाहिए।[९] यात्रा अथवा किसी नये कार्य के प्रारंभ में नमस्कार महामंत्र अथवा लोगस्स का कायोत्सर्ग करना मंगलदायक माना गया है।[१०] तीन, नौ या इक्कीस नमस्कार महामंत्र का कायोत्सर्ग किया जा सकता है। तीन नवकार का कायोत्सर्ग कर कार्य करने चलें और यदि अपशकुन हो जाये तो दूसरी बार वहीं पर नौ नवकार का कायोत्सर्ग कर आगे चलें फिर अपशकुन हो जाये तो तीसरी बार वहीं पर इक्कीस नमस्कार महामंत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए। तीसरी बार भी यदि बाधा आए तो सोचना चाहिए इस काम को करना हितकर नहीं है, उसे उस समय छोड़ देना चाहिए।[११] प्रत्येक कार्य के आरंभ में कायोत्सर्ग करना आवश्यक है, यह ध्यान है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण है कि इससे विद्युत का एक वलय बनता है जिससे बाहर की बाधाएं अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। कोई भी शक्ति उसमें प्रवेश नहीं कर सकती। मंगलकारी होने के कारण ही लोगस्स को "सव्वदुक्ख विमोक्खणं—समस्त

दुःखों का निवारक कहा गया है।[१२] आवश्यक सूत्र में कायोत्सर्ग के चार प्रयोजन उपलब्ध हैं[१३]–

१. पायच्छितकरणेणं – प्रायश्चित करने के लिए
२. विसोहीकरणेणं – विशुद्धि करने के लिए
३. विसल्लीकरणेणं – शल्यरहित होने के लिए
४. पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए– पाप कर्मों का घात करने के लिए

आवश्यक निर्युक्ति में कायोत्सर्ग के प्रयोजन की चर्चा करते हुए लिखा है–

पावुब्घाई कीरह उस्सग्गो मंगलंति उद्देसो।
अणुवहिय मंगलण्णं मा हुज्ज कहिंच णे विग्घं ॥[१४]

कायोत्सर्ग मंगल है। पाप का निराकरण करने के लिए यह किया जाता है। मंगल का अनुष्ठान न करने पर कहीं हमारे कार्य में विघ्न न आ जाए इस दृष्टि से कार्य के प्रारंभ में मंगल का अनुष्ठान करणीय है।

उपरोक्त विश्लेषण से कायोत्सर्ग के प्रमुखतः दो उद्देश्य हमारे सामने स्पष्ट होते हैं[१५]–

१. मंगल
२. विशुद्धि

साधना के क्षेत्र में सबसे बड़ा मंगल है–कायोत्सर्ग। दूसरा उसका उद्देश्य है–विशुद्धि। एक साधक कायोत्सर्ग की प्रतिमा में स्थिर होकर अपने पूर्वकृत प्रमाद का परिशोधन करता है। भेद-विज्ञान की अनुभूति, पृथक अस्तित्व का अनुभव, ममत्व का विसर्जन और शक्ति की सुरक्षा के लिए भी कायोत्सर्ग का बहुत बड़ा महत्त्व है।

घटना प्रसंग दस अक्टूबर सन् १९९८ का है। गुरुदेव श्री तुलसी का चातुर्मास श्री डूंगरगढ़ (राजस्थान) था। वहां उनके सान्निध्य में तेरापंथ महासभा का अधिवेशन आयोजित था। उस अधिवेशन में दौलतगढ़ निवासी इंदौर प्रवासी मदनलालजी रांका भी आए हुए थे। साथ में पत्नि शशिकला, पुत्र निलेश, पुत्री सीमा, किरण और श्रीमति राजू घीया थी। उन्होंने उस समय चार-पांच दिन गुरुदेव की उपासना की। जिस दिन वहां से रवाना हो रहे थे, गुरुदेव के पास मंगलपाठ सुनने गये। गुरुदेव ने कहा–भाया! आज। वे गुरुदेव के इंगित को नहीं समझ सके और बोले गुरुदेव! हमें एकम् को इंदौर पहुँचना जरूरी है। गुरुदेव से मंगलिक सुनकर वे जैसे ही रवाना हुए आंधी तूफान शुरू हो गया, फिर भी गुरु इंगित की तरफ ध्यान नहीं गया। वहां से कुछ आगे बढ़े की गाड़ी की चैन टूट गई फिर भी नहीं संभले।

डूंगरगढ़ से रवाना होने के बाद उन्होंने रात्रि विश्राम अजमेर धर्मशाला में किया। वहां से पुष्करजी गये। पुनः अजमेर आए। कुछ खाद्य पदार्थ साथ में लिए और वहां से रवाना हुए। गाड़ी में बैठे-बैठे ही शशिकला बहन की बायीं आँख फड़कने लगी। उसको कुछ चिंता हुई क्योंकि गत रात्रि में उसको स्वप्न में एक ऐसे फूल का जेवर दिखाई दिया जिसकी एक लड़ टूटी हुई थी। लोगस्स के प्रति सहज श्रद्धा होने से वह लोगस्स का ध्यान करने लगी। नसीराबाद तक पहुँचते ही अचानक एक मिलट्रि की गाड़ी से उनकी गाड़ी को टक्कर लगी। टक्कर लगते ही गाड़ी का दरवाजा स्वतः ही खुल गया। बहन शशिकला लोगस्स बोल रही थी। वह लोगस्स के प्रभाव से २०० फीट दूर उछलकर गिर गई और वे पांचों सदस्य गाड़ी में थे, गाड़ी ने तीन पलटी खाई, फिर तीस फुट गड्ढे में जाकर गिरी। सबकों काफी चोट आई। बहन शशिकला गिरते ही एक बार तो मूर्च्छित हो गई पर कुछ ही क्षणों में उसे होश आ गया। होश आते ही उसने देखा—उसके पास दो औरतें और एक पुरुष खड़ा है। उन्होंने कहा—बाई! आपको कहां लगी। आपके पास जो जोखिम का सामान है वह हमें दे दो आपको व्यवस्थित मिल जायेगा। उसको ज्यादा चोट नहीं आई थी वह अब भी मन ही मन लोगस्स बोल रही थी। उसने चश्मा, कान की बाली और चैन सब उनको दे दिये। वे कलश लेकर आए और कहा—बाई! पानी पी लो। उसने पानी नहीं पिया। फिर उन्होंने उससे अपने साथ चलने को कहा—बहन ने कहा—"मुझे लेने आप लोग क्यों आए, मेरे घरवाले क्यों नहीं आए? तब उन्हें बताया गया आपके घर वाले सब गड्ढे में गिरे हैं। वे उसको वहां लेकर गये। उसने ऊपर से देखा सब खून से लथपथ थे। लोग उन्हें बाहर निकाल रहे थे। बहन ने उस समय बहुत हिम्मत का परिचय दिया।

उन्होंने उनसे इंदौर (घर) के फोन नम्बर मांगे, उनको सूचना की और उसके सारे आभूषण उसे अच्छी तरह सौंप कर अदृश्य हो गये कौन थे, कहाँ से आए कुछ भी पता नहीं चला। बहुत जल्दी पांच-दस मिनट में ही मिलिट्री रक्षा करने आ गई। उन सबको अजमेर हॉस्पीटल में भर्ती कर दिया गया। वहां के दिगम्बर समाज ने भी समय पर जागरूकता का परिचय दिया। अस्पताल का पूरा हॉल उनके लिए खाली करवा दिया। मदनलालजी को तो एक पैर में पैंतीस फैक्चर हुए थे। पारिवारिक सदस्यों के पहुँचने से पहले ही अतिशीघ्र सबका इलाज शुरू हो गया। धीरे-धीरे सब स्वस्थ हो गये।

दो दिन पूर्व उसी गड्ढे में एक कार दुर्घटना से सात व्यक्ति मृत निकाले गये थे पर धर्म के प्रभाव से गुरु कृपा से वे सब स्वस्थ होकर सकुशल घर लौट आए।

घटना के निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि कष्ट के क्षणों में इष्ट का शक्ति

देता है, संबल देता है, साहस देता है, सहारा देता है और अनुकूल वातावरण को भी निर्मित करता है तथा यह घटना इस बात को भी स्पष्ट करती है कि गुरु घट-घट के ज्ञाता और भविष्य द्रष्टा होते हैं। उनके इंगित को समझने वाला सुखी और सफल होता है।

मृत्यु और कायोत्सर्ग में अन्तर

कायोत्सर्ग जैन साधना की विशिष्ट प्रक्रिया है। इसका शाब्दिक अर्थ है चैतन्य जागरण के साथ शरीर का उत्सर्ग। प्रश्न हो सकता है क्या मृत्यु कायोत्सर्ग नहीं है? क्योंकि उस समय भी शरीर का उत्सर्ग होता है। इस प्रश्न का समाधान कायोत्सर्ग की परिभाषा में ही खोजा जा सकता है—चैतन्य जागरण के साथ शरीर का उत्सर्ग कायोत्सर्ग है। आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में "मैं शरीर हूँ यह अनुभूति जाने अनजाने सुदीर्घ काल से चल रही है। जिस क्षण शरीर की मूर्च्छा टूट जाती है, मैं शरीर नहीं हूँ यह चेतना जागृत हो जाती है, तब कायोत्सर्ग संपन्न होता है। मन का ममत्व नहीं छूटता इसलिए मौत के क्षण में काया के छूट जाने पर कायोत्सर्ग नहीं होता। जिस समय मूर्च्छा का बंधन शिथिल हो जाता है, उस क्षण शरीर का तनाव मिट जाता है, कायोत्सर्ग अपने आप सध जाता है।"[१६]

कायोत्सर्ग का प्रयोगिक अर्थ

कायोत्सर्ग का प्रायोगिक अर्थ है—शिथिलीकरण—श्वास को शांत करना, शरीर की चेष्टाओं को शांत करना, मन को खाली करना। शिथिलीकरण से शरीर शिक्षित होता है वह मन की आज्ञा का पालन करता है। शिथिलीकरण से मस्तिष्क को विश्राम मिलता है, नाड़ी संस्थान को विश्राम मिलता है। शिथिलीकरण का गहन अभ्यास होने पर प्रत्येक कोशिका को विश्राम की स्थिति में लाया जा सकता है।

शिथिलीकरण का प्रयोग[१७]

कायोत्सर्ग की मुद्रा, आँखें बंद, श्वास मंद। शरीर को स्थिर, शिथिल और तनाव मुक्त करें। मेरुदण्ड और गर्दन को सीधा रखें, अकड़न न हो। मांसपेशियों को ढीला छोड़ें। शरीर की पकड़ को छोड़ दें।

प्रत्येक अवयव में शीशे की भांति भारीपन का अनुभव करें।

प्रत्येक अवयव में रुई की भांति हल्केपन का अनुभव करें।

शरीर के प्रत्येक अवयव को शिथिल करें और प्रत्येक अवयव के प्रति जागरूक बने।

चित्त को पैर से सिर तक क्रमशः शरीर के प्रत्येक भाग पर ले जाएं। पूरे भाग में चित्त की यात्रा करें।

शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। प्रत्येक मांसपेशी और प्रत्येक स्नायु शिथिल हो जाएं। पूरे शरीर की शिथिलता को साधें। गहरी एकाग्रता, पूरी जागरूकता।

इस प्रकार कायोत्सर्ग, शरीर के शिथिलीकरण और ममत्व विसर्जन का प्रयोग है।

कायोत्सर्ग : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

वैज्ञानिक दृष्टि से कायोत्सर्ग तनाव विसर्जन की प्रक्रिया है।[१८] शरीर शास्त्रानुसार तनाव से अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां उत्पन्न होती हैं, उदाहरणार्थ शारीरिक और मानसिक तनाव से रक्त में यकृत द्वारा ग्रहित शर्करा का बहाव होने से शरीर पर निम्न प्रकार के दुष्प्रभाव देखे गये हैं–

- स्नायु में शर्करा कम हो जाती है।
- लेक्टिक एसिड स्नायु में एकत्रित होती है।
- लेक्टिक एसिड की अभिवृद्धि होने पर शरीर में उष्णता बढ़ती है।
- स्नायुतंत्र में थकान का अनुभव होने लगता है।
- रक्त में प्राणवायु की मात्रा न्युन हो जाती है।
- पाचन क्रिया मंद या बिल्कुल बंद हो जाती है।
- लार ग्रंथि का स्राव मंद हो जाता है।
- श्वसन गति तीव्र हो जाती है।
- हृदय की गति तीव्र हो जाती है।
- रक्तचाप बढ़ जाता है।
- मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है।
- थाइरोक्सीन का अधिक स्राव होने लगता है।
- अनुकंपी नाड़ी-तंत्र की अधिक सक्रियता से आवेश बढ़ता है।
- एड्रीनल का अधिक स्राव होने से उत्तेजनाएं बढ़ती हैं।

किंतु कायोत्सर्ग से एसिड पुनः शर्करा में परिवर्तित हो जाता है। लेक्टिक एसिड का स्नायुओं में जमाव न्युन हो जाता है परिणाम स्वरूप शारीरिक उष्णता न्युन होती है और स्नायुतंत्र में अभिनव ताजगी का अनुभव होने लगता है। रक्त में प्राणवायु की मात्रा में वृद्धि होने के साथ-साथ उपरोक्त दुष्प्रभाव प्रभावहीन हो जाते हैं। रात्रि में बारह बजे से चार बजे तक ध्यान आदि का उत्तम समय माना

गया है। इसका कारण है कि उस समय रक्तचाप या चंचलता कम होने से आवेग, तनाव आदि शांत हो जाते हैं।

कायोत्सर्ग : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

आध्यात्मिक दृष्टिकोण के आधार पर स्थूल से सूक्ष्म जगत् की यात्रा का बाह्य जगत् से भीतर के जगत् में प्रवेश करने का उपक्रम है—कायोत्सर्ग। योग शास्त्रों में कायोत्सर्ग को आसनों का राजा होने के कारण 'श्वसन' कहा है। अन्य योगासन शरीर को कुशल और स्वस्थ बनाते हैं जबकि 'श्वसन' मन को शांत कर व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति को जागृत करता है, आन्तरिक ताकत की अनुभूति करवाता है।

डॉ. रमेश कावड़ियां ने तनाव ग्रस्त सात व्यक्तियों का E.E.G. लिया। फिर उनको कायोत्सर्ग करवाकर पुनः E.E.G. लिया। दूसरी बार में E.E.G. में बड़े पैमाने पर अल्फा तरंग नोंधे थे। अल्फा स्थिति में अनुसंवेदी क्रिया, भागों या लड़ो की प्रक्रिया कम से कम होती है।[१६] स्वास्थ्यप्रद न्यूरोपेप्टाइड्स और एन्डोर्फिन्स स्रावित होने से स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति को गति मिलती है। डॉ. कावडियां ने लिखा है कि हमारे पास तीस मरीज ऐसे हैं जिनको बॉयपास सर्जरी की सलाह दी गई थी लेकिन उन्होंने वह करवाई नहीं। श्वसन, ध्यान के प्रयोगों के दौरान ३० में से २९ मरीज अब ऐसा कहते हैं कि उनको अब कभी भी बॉयपास सर्जरी करवाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वे जिस प्रकार की स्फूर्ति की अनुभूति करते हैं उससे ऐसा लगता है कि नई धमनियां तैयार होकर उनके हृदय को आवश्यकतानुसार रक्त दे रही हैं।

दिल्ली, महरौली में स्वामी धर्मानन्दजी भी हृदय रोगियों को प्रेक्षा ध्यान, योगासन आदि साधनाओं द्वारा बॉयपास सर्जरी से बचाने में सफल हुए हैं।

अतः इतना तो निर्विवाद स्पष्ट है कि शरीर का शिथिलीकरण मन को शांत करने में मदद पहुँचाता है। कायोत्सर्ग में पहले शरीर को खींचा जाता है फिर शिथिल किया जाता है इससे शिथिलीकरण आसान बनता है। इसके साथ-साथ शरीर के जो-जो हिस्से खींच रहे हैं और शिथिल किये जा रहे हैं उसके ऊपर चेतना केन्द्रित करना कायोत्सर्ग का महत्त्वपूर्ण पहलू है। इसी का नाम वर्तमान में जीना है। ऐसा होने से हृदय की क्षमता में सुधार होता है, कार्यक्षमता एवं मानसिक शांति का विकास होता है। इसी प्रकार ॐ, अर्हम्, लोगस्स, नमस्कार महामंत्र आदि में लीन एवं तन्मय होने से भी कर्म निर्जरा के साथ-साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है।

धार्मिक प्रकृति के चाँदमलजी बैद (राजलदेसर) को अदीट्ठ का ऑपरेशन करवाना था। उन्होंने कहा–"जब मैं कायोत्सर्ग में लीन हो जाऊं तब मेरा ऑपरेशन करना सुंघनी सुंघाने की कोई आवश्यकता नहीं है। समय की चिन्ता मत करना।" ऑपरेशन में दो घंटे लगे। उन्होंने कायोत्सर्ग भी दो घंटे से पूरा किया। मुनि श्री सोहनलालजी (चूरू) ने पेट का ऑपरेशन बिना सुंघनी के ध्यान में स्थित होकर करवाया था। कई साधु-साध्वियां केश लुञ्चन के साथ ध्यानस्थ हो जाते हैं। मुझे जहाँ तक ध्यान है आचार्य श्री महाश्रमणजी भी ध्यानस्थ अवस्था में लोच करवाते हैं।

प्रेक्षा ध्यान के आरंभ में और समापन के ठीक पूर्व की जाने वाली अर्हं/महाप्राण ध्वनि से निर्मित बाह्य ध्वनि तरंगों से व्यक्ति प्रभावित होता है। इससे न केवल वैयक्तिक क्षमता का विकास होता है बल्कि एकाग्रता और निर्णय की क्षमता में भी अभिवृद्धि होती है। लम्बे समय तक इसका अभ्यास करने से मन की एकाग्रता बढ़ती है, प्राणशक्ति तथा स्मरण-शक्ति का विकास होता है। इन ध्वनि प्रकंपनों के प्रभाव से हमारे अनैच्छिक तंत्रिका संस्थान की दो धाराएं अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिकाओं के बीच अच्छा संतुलन स्थापित होता है।[२०] कायोत्सर्ग के पूर्व अर्हं ध्वनि के उच्चारण से निर्विचारता और शिथिलीकरण की प्रक्रिया में भी सहयोग मिलता है।[२१]

कायोत्सर्ग का प्रयोजन

कायोत्सर्ग का प्रधान उद्देश्य आत्मा का सान्निध्य प्राप्त करना और सहज गुण मानसिक संतुलन बनाये रखना है। मानसिक संतुलन बनाये रखने से बुद्धि निर्मल और शरीर स्वस्थ रहता है। निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु ने कायोत्सर्ग के पांच प्रयोजनों का उल्लेख किया है–

देहमइजड्डसुद्धि सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा ।
झायइ य सुहं झाणं एग्गो काउसग्गम्मि ॥[२२]

१. देहजाड्यसुद्धि–श्लेष्म आदि के द्वारा देह में जड़ता आती है। कायोत्सर्ग से श्लेष्म आदि के दोष नष्ट हो जाते हैं, इसलिए उनसे उत्पन्न होने वाली जड़ता भी समाप्त हो जाती है।
२. मतिजाड्यसुद्धि–कायोत्सर्ग में मन की प्रवृत्ति केन्द्रित हो जाती है, उससे चित्त एकाग्र होता है। बौद्धिक जड़ता समाप्त होकर उसमें तीक्ष्णता आती है।

३. सुखदःखतितिक्षा—कायोत्सर्ग से सुखदुःख को सहन करने की अपूर्व क्षमता विकसित होती है क्योंकि कायोत्सर्ग में बाहर व भीतर जो कुछ भी हो रहा है, उन सबको सहन करना होता है। सर्दी, गर्मी, आंधी, तूफान पीड़ा या किसी वस्तु का स्पर्श—इन सबको सहन करना कायोत्सर्ग है। अतएव सुख-दुःख को समभाव से सहन करने का प्रयोजन है—कायोत्सर्ग

४. अनुप्रेक्षा—कायोत्सर्ग में अवस्थित व्यक्ति अनुप्रेक्षा या भावना का स्थिरता पूर्वक अभ्यास करता है।

५. शुभ ध्यान—कायोत्सर्ग से शुभ ध्यान का सहज अभ्यास हो जाता है। कायोत्सर्ग व्यक्ति को निर्भार और प्रशस्त ध्यान में उपयुक्त करता है।[२३] प्रशस्त ध्यान के दो प्रकार हैं—

१. धर्म ध्यान

२. शुक्ल ध्यान

शुक्ल शब्द 'शुच-शौचे' धातु से 'रन्' एवं 'र' का लोप करने पर बनता है। जो श्वेत अनाविलता, पवित्रता, धवलता आदि का वाचक है। जो सभी कर्मों का शोधन कर दे, वह शुक्ल है—"शोधयति अष्ट प्रकारं कर्ममलं शुचं वा कलमयतीति शुक्लम्।[२४] अत्यन्त निर्मल और निष्प्रकंप दशा को शुक्ल कहते हैं—सु निर्मलं निष्प्रकंपंच अर्थात् इस शुक्लत्त्व दशा को प्राप्त कर साधक दिव्य, भव्य, नव्य तथा कृतकृत्य हो जाता है।[२५]

कायोत्सर्ग के प्रकार

अष्ट प्रकार के कर्मों को नष्ट करने के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है, उसे कर्म व्युत्सर्ग कहते हैं। कायोत्सर्ग के जो विविध प्रकार बतलायें गये है। उनमें शारीरिक दृष्टि से और विचार की दृष्टि से भेद किये गये हैं। प्रयोजन की दृष्टि से कायोत्सर्ग के दो प्रकार हैं[२६]—

१. चेष्टा कायोत्सर्ग

२. अभिभव कायोत्सर्ग

१. चेष्टा कायोत्सर्ग—दोष विशुद्धि के लिए किया जाता है।

२. अभिभव कायोत्सर्ग—यह कायोत्सर्ग दो स्थितियों में किया जाता है। प्रथम दीर्घकाल तक आत्मचिंतन के लिए या आत्म विशुद्धि के लिए मन को एकाग्र कर कायोत्सर्ग करना और दूसरा संकट आने पर कायोत्सर्ग करना जैसे विप्लव, अग्निकांड, दुर्भिक्ष आदि।

कायोत्सर्ग का कालमान

अभिभव कायोत्सर्ग का कालमान जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट एक वर्ष का है। चेष्टा कायोत्सर्ग दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और संवत्सरिक रूप में पांच प्रकार का है।

कायोत्सर्ग में मन को श्वास पर केन्द्रित किया जाता है। एदर्थ इसका कालमान श्वास गिनती से किया जाता है। यह कायोत्सर्ग विभिन्न स्थितियों में ८, २५, २७, ३००, ५०० और १००८ उच्छ्वास तक किया जाता है।

कायोत्सर्ग में श्वासोच्छ्वास की गिनती लोगस्स व नमस्कार महामंत्र की संपदानुसार की जाती है।

नमस्कार महामंत्र में ८ श्वासोच्छ्वास और लोगस्स में २८ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग होता है। श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग में अमुक श्वासोच्छ्वास प्रमाण—ऐसा जो शास्त्रीय विधान है उसमें श्वासोच्छ्वास से मतलब हम जो श्वास ले रहे हैं, छोड़ रहे हैं उससे नहीं है। यहाँ श्वासोच्छ्वास गाथा का एक पद समझना चाहिए। उदाहरणार्थ, लोगस्स उज्जोयगरे—इस एक चरण का एक श्वासोच्छ्वास गिनना। इस तरह एक गाथा के चार श्वासोच्छ्वास हुए। एक लोगस्स में चंदेसु वाले पद्य तक गिनने से २५, सागरवर पद्य तक गिनने से २७ और सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु तक गिनने से २८ श्वासोच्छ्वास होते हैं। षडावश्यक में जो कायोत्सर्ग किया जाता है उसमें अतिचारों के अतिरिक्त प्रमुख रूप से लोगस्स—चतुर्विंशति स्तव का ध्यान, किया जाता है।

षडावश्यक में कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग प्रायश्चित का पांचवां भेद है।[२७] आवश्यक सूत्र में प्रतिक्रमण आवश्यक के पश्चात् कायोत्सर्ग आवश्यक का विधान है। प्रतिक्रमण में अतिचारों की विशुद्धि के लिए विधिपूर्वक कायोत्सर्ग का स्वरूप बताया गया है। आत्मविकास की प्राप्ति के लिए शरीर संबंधी समस्त चंचल व्यापारों का त्याग करना ही इस सूत्र का प्रयोजन है। आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए, शल्यों का त्याग करने के लिए तथा पापों का नाश करने के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है। गमन, आगमन, विहार, शयन, स्वप्न-दर्शन, नावादि से नदी संतरण, ईर्यापथिक प्रतिक्रमण—इनमें २५ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग किया जाता है। सूत्र के उद्देश, समुद्देश के समय २७ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग तथा अनुज्ञा प्रस्थापना एवं काल प्रतिक्रमण में ८ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग होता है। अनुयोग द्वार में

कायोत्सर्ग को आवश्यक नाम व्रत चिकित्सा कहा है[२८] अर्थात् व्रत में लगे हुए अतिचारों के दोषों को दूर कर कायोत्सर्ग आत्मा को निर्मल एवं शांत बना देता है।

प्रवचन सारोद्धार में २९ एवं विजयोदया वृत्ति में ३८ कायोत्सर्ग के ध्यान का, परिमाण और कालमान निम्न प्रकार से उल्लिखित है–

प्रवचन सारोद्धार

कायोत्सर्ग	चतुर्विंशति स्तव	श्लोक	चरण	उच्छ्वास
दैवसिक	४	२५	१००	१००
रात्रिक	२	१२ $\frac{1}{2}$	५०	५०
पाक्षिक	१२	७५	३००	३००
चातुर्मासिक	२०	१२५	५००	५००
संवत्सरिक	४०	२५२	१००८	१००८

विजयोदया वृत्ति

कायोत्सर्ग	चतुर्विंशति स्तव	श्लोक	चरण	उच्छ्वास
दैवसिक	४	२५	१००	१००
रात्रिक	२	१२ $\frac{1}{2}$	५०	५०
पाक्षिक	१२	७५	३००	३००
चातुर्मासिक	१६	१००	४००	४००
संवत्सरिक	२०	१२५	५००	५००

आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार कायोत्सर्ग का उच्छ्वास निम्न प्रकार है[३१]–

कायोत्सर्ग	उच्छ्वास
दैवसिक	१००
रात्रिक	५०
पाक्षिक	३००
चातुर्मासिक	५००
संवत्सरिक	१००८

अन्य अनेक प्रयोजनों में ८, १६, २५, २७, १०८ उच्छ्वासमान कायोत्सर्ग का विधान है।[३२] नमस्कार महामंत्र की नौ आवृत्तियां २७ श्वासोच्छ्वास में की जाती है।[३३] उच्छ्वास का कालमान एक चरण के समान मान्य हैं।[३४]

तेरापंथ परम्परा में मघवा युग के अनेक वर्षों तक पांचों प्रतिक्रमणों में चार

लोगस्स (चतुर्विंशतिस्तव) का ध्यान करने की परिपाटी थी। तेरापंथ के पंचम आचार्य, आचार्य श्री मघराजजी ने पर्व दिन की विशेषता तथा अधिक स्वाध्याय लाभ की दृष्टि से पाक्षिक प्रतिक्रमण के लिए १२ लोगस्स, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में २० लोगस्स, संवत्सरिक प्रतिक्रमण में ४० लोगस्स का कायोत्सर्ग करने की नई परम्परा की। शेष दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण के लिए चार लोगस्स के कायोत्सर्ग की परिपाटी ही जारी रखी गई।[३५]

दिगम्बर परम्परा में आचार्य अमितगिरि ने यह विधान किया—दैवसिक कायोत्सर्ग में १०८ और रात्रिक कायोत्सर्ग में ५४ उच्छ्वासों का ध्यान करना चाहिए और अन्य कायोत्सर्ग में २७ उच्छ्वासों का ध्यान करना चाहिए। २७ उच्छ्वासों में नमस्कार की नौ आवृत्तियां हो जाती है क्योंकि तीन उच्छ्वासों में नमस्कार महामंत्र पर कायोत्सर्ग किया जाता है।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं एक उच्छ्वास में णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं दूसरे उच्छ्वास में तथा णमो लोए सव्व साहूणं तीसरे उच्छ्वास में—इस प्रकार तीन उच्छ्वासों में एक नमस्कार महामंत्र का कायोत्सर्ग पूर्ण होता है।

आचार्य अमितगिरि का अभिमत है कि श्रमण को दिन व रात में कुल २८ बार कायोत्सर्ग करना चाहिए।[३६] स्वाध्याय काल में १२ बार, वंदनकाल में ६ बार, प्रतिक्रमण काल में ८ बार, योग भक्ति काल में २ बार—इस प्रकार कुल २८ बार कायोत्सर्ग का विधान है।

आचार्य अपराजित का मंतव्य है कि पंच महाव्रत संबंधी अतिक्रमण होने पर १०८ उच्छ्वासों का कायोत्सर्ग करना चाहिए। कायोत्सर्ग करते समय मन की चंचलता या उच्छ्वासों की संख्या की परिगणना में संदेह समुत्पन्न हो जाये तो आठ उच्छ्वास का ओर अधिक कायोत्सर्ग करना चाहिए।[३७] कुछ अन्य परम्पराओं में विविध क्रियाओं में कायोत्सर्ग का निम्न रूप से प्रमाण उपलब्ध होता है—

- कुस्वप्न, दुःस्वप्न हेतु जो कायोत्सर्ग किया जाता है वह सागरवरगंभीरा तक होता है।
- प्रतिक्रमण आदि में प्रायश्चित के रूप में चंदेसु निम्मलयरा तक कायोत्सर्ग होता है।
- आराधना तथा शांति के निमित्त सम्पूर्ण लोगस्स सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु तक का कायोत्सर्ग होता है।
- दैवसियं राइयं प्रतिक्रमण में तप चिंतामणि के कायोत्सर्ग में मुख्य रूप से चिंतन करना, यह न हो सके तो १६ नवकार गिने जाते हैं।
- दैवसिक प्रतिक्रमण में देवसिय पायच्छित का काउसग्ग चंदेसु निम्मलयरा तक तथा दुक्खक्खओं कम्मक्खओं का कायोत्सर्ग सम्पूर्ण करना होता है।

जिज्ञासा

कायोत्सर्ग में नवकार या लोगस्स ही क्यों गिना जाता है? वह भी कहीं चंदेसु निम्मलयरा तक, कहीं सागरवरगंभीरा तक और कहीं सम्पूर्ण भी—ऐसा किसलिए? पूर्व कालिक साधु जो दीर्घकाल तक काउसग्ग में रहते थे, काउसग्ग में क्या गिनते होंगे?

समाधान

कायोत्सर्ग में आत्मा को अत्यन्त स्थिर कर आत्मा के स्वरूप का चिंतन करना यह मूल मार्ग था। योगी महात्मा काउसग्ग में आत्म स्वरूप का चिंतन करते थे। लोक का स्वरूप सोचते, इस कारण अत्यन्त दीर्घकाल तक काउसग्ग में रहते परन्तु धर्मानुष्ठान करने वाले सर्व साधारण जीव इतना सूक्ष्म पढ़े हुए नहीं होते अतः आसन्न उपकारी इस वर्तमान चौबीसी के चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति के रूप में चतुर्विंशति-स्तव अर्थात् लोगस्स गिना जाता है। लोगस्स की सात गाथाएं हैं—एक-एक गाथा में चार-चार पद हैं। एक-एक श्वास में एक-एक पद बोला जाता है अतः लोगस्स के अट्ठाइस पद होने के कारण २८ श्वासोच्छ्वास उत्पन्न होते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि—योग के ये आठ अंग हैं। इसी तरह श्वास के अनुसार पदों का उच्चारण भी काउसग्ग का एक स्वरूप है।

संवत्सरी प्रतिक्रमण का जो बड़ा कायोत्सर्ग है, वह एक हजार आठ श्वास के परिमाण वाला है। चंदेसु निम्मलयरा तक गिनने से एक लोगस्स के २५ श्वास होने से ४० लोगस्स के १००० श्वास हुए। तदुपरान्त एक नवकार गिनने से ८ श्वास होते हैं १००० में ८ श्वास मिलाने से १००८ श्वास हो जाते हैं—इस दृष्टि से कुछ परम्पराओं में संवत्सरी के कायोत्सर्ग में लोगस्स का पाठ चंदेसु निम्मलयरा तक गिना जाता है और कुछ परम्पराओं में पूरा लोगस्स बोला जाता है।

इसी प्रकार चातुर्मासिक प्रतिक्रमण का कायोत्सर्ग ५०० श्वासोच्छ्वास का है अतः चंदेसु निम्मलयरा तक गिनते हुए २० लोगस्स गिनने से उपर्युक्त श्वासों की संख्या पूर्ण होती है। पक्खी प्रतिक्रमण का कायोत्सर्ग ३०० श्वासो का है। श्वासो की दृष्टि से १२ लोगस्स गिने जाते हैं इस प्रकार चंदेसु निम्मलयरा तक की गणना श्वासोच्छ्वास से संबंध रखती है। सुबह के प्रतिक्रमण में जो १०८ श्वास का कायोत्सर्ग है वह दुःस्वप्न आदि के निवारण के लिए है वहां सागरवर गंभीरा गिनने से एक लोगस्स के २७ श्वास के हिसाब से १०८ श्वास पूरे होते हैं, इसलिए सागरवरगंभीरा तक गिना जाता है और आत्मशांति हेतु दुःख क्षयादि के निमित्त से

जब कायोत्सर्ग किया जाता है तब शांति के निमित्त होने के कारण परिपूर्ण लोगस्स गिना जाता है।

लोगस्स का जो अभ्यस्त न हो उसकी सरलता सुविधा के लिए उसकी जगह रूपक के तौर पर नवकार से कायोत्सर्ग गिना जाता है। कायोत्सर्ग जब पूरा हो जाए तब कुछ विशेष उच्चारण के रूप में नमस्कार महामंत्र बोलकर कायोत्सर्ग पूरा किया जाता है।

लोगस्स की आवृत्ति रूप ध्यान क्यों?

इस पाठ का एकाग्रतापूर्वक चिंतन करने से दर्शन विशुद्धि होती है, यह आगम सम्मत्त तथ्य है। शरीर की चेष्टाओं को रोककर ही एकाग्रता स्थापित की जा सकती है। कायोत्सर्ग में शरीर की चेष्टाओं का निरोध कर दिया जाता है। इस बात पर ध्यान देने से कायोत्सर्ग में लोगस्स सूत्र के चिंतन का रहस्य समझ में आ जाता है क्योंकि समस्त क्रियाओं और ज्ञान आराधना के मूल रूप में दर्शन-विशुद्धि है। लोगस्स सूत्र के अर्थ का एकाग्रता से पुनरावर्त्तन करने पर सहज रूप से ध्यान हो जाता है।

लोगस्स सूत्र या उसके अर्थ का चिंतन एकाग्रता पूर्वक करने से अशुभ चिंतन (योग) का निरोध और शुभ चिंतन का भाव प्रवाह बहता है अतः वह ध्यान रूप में परिणत हो जाता है। किसी सूत्र या अर्थ में दत्तचित्त होने के लिए उसकी आवृत्ति करना आवश्यक है। यही कारण है कि कायोत्सर्ग और ध्यान में लोगस्स सूत्र की आवृत्ति की जाती है।

कई बार यह जिज्ञासा की जाती है कि क्या तीर्थंकर भगवान भी लोगस्स सूत्र का ध्यान करते थे?

तीर्थंकर भगवान ध्यान में क्या करते थे, यह वर्णन कहीं नहीं देखा। यों तो किसी भी साधक के ध्यान का विवरण ग्रंथों में नहीं देखा किंतु वे ध्यान करते थे और आगमों में ध्यान की विधि का वर्णन स्वयं जिनेश्वर देव ने किया है। उस विधि से अन्य मुनि ध्यान करते हैं। श्रुत के आलंबन में धर्म ध्यान किया जाता है उसमें आवश्यक सूत्र भी पूर्व भव में अधीत हो सकता है, वे उस आवश्यक चतुर्विंशतिस्तव अथवा उत्कीर्तन का आलंबन ले तो कोई वैधानिक बाधा प्रतीत नहीं होती। क्योंकि तीर्थंकर भगवान सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करते हैं और उत्कीर्तन सूत्र में सिद्ध हुए तीर्थंकरों का नाम उत्कीर्तन होता है। फिर यह सूत्र नमस्कार सूत्र नहीं है, गुण उत्कीर्तन सूत्र है। यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तीर्थंकर भगवान छदमस्थ अवस्था में पूर्व भव में अधीत श्रुत* के

---

* वर्तमान चौबीसी में भगवान ऋषभ पूर्व भव में चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे और शेष तेईस तीर्थंकरों ने पूर्व भव में ३२ आगमों का अध्ययन किया था।

आलंबन से ही ध्यान करते हैं, केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद तो जीवनपर्यन्त ध्यानान्तर दशा रहती है। अंतिम समय में भवान्त क्रिया करते हुए तीर्थंकर भगवन्तों के शुक्ल ध्यान के तीसरे-चौथे भेद रूप का ध्यान होता है और वे स्वयं भी मुक्त हो जाते हैं।

कायोत्सर्ग–सुरक्षा कवच

प्राचीन पौराणिक कथाओं में हम पढ़ते आ रहे हैं कि अमुक योद्धा युद्ध में कवच धारण करके गया जिससे शत्रु के बाणों का उसके शरीर पर कुछ भी असर नहीं हुआ।

दानवीर कर्ण के विषय में प्रसिद्ध है कि उसे जन्म से ही अद्‌भुत कवच प्राप्त था, जिस कारण वह अजेय और अभेद्य योद्धा था। इन्द्र ने महाभारत के युद्ध के पूर्व ही अर्जुन की रक्षा हेतु ब्राह्मण बनकर कर्ण से दान में कवच और कुंडल की याचना कर ली। कर्ण ने शरीर से उतारकर कवच कुंडल ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को दे दिये जिस कारण वह अभेद्य व अजेय नहीं रह सका। कवच बाह्य आघातों व प्रहारों से शरीर की रक्षा करता है। कायोत्सर्ग से तनाव दूर होता है और बाहरी दुष्प्रभावों से बचाव भी होता है। साधारणतया दो स्थितियों में कायोत्सर्ग का विधान है–प्रवृत्ति के बाद और कष्ट के क्षणों में। प्रवृत्ति की संपन्नता पर कायोत्सर्ग करने से शारीरिक, स्नायविक और मानसिक तनाव समाप्त हो जाता है। प्रवृत्ति के साथ उत्पन्न होने वाले दोष निरस्त हो जाते हैं। कायोत्सर्ग करने वाला चेतना के उस तल में चला जाता है जिस तल में जाने पर तैजस शरीर की सक्रियता बढ़ जाती है। वह इतना आलोक विकीर्ण करता है कि उसके पास आने वाले निस्तेज हो जाते हैं कायोत्सर्ग तैजस के विकीर्ण की एक रहस्यपूर्ण पद्धति है। वह चेतना लोक में चले जाने पर अपने आप घटित होती है। भगवान महावीर के पूर्व की घटना है। एक सुदर्शन कापालिक नाम का महामांत्रिक मंत्र साधना कर रहा था। उसे बलि देने के लिए सर्व लक्षण संपन्न पुरुष की अपेक्षा थी। एक बार भगवान पार्श्व के प्रमुख शिष्य सुदर्शन मुनि कुछ साधुओं के साथ सुकर्ण के आश्रम में पहुँचे। सुकर्ण को सर्व लक्षण संपन्न जानकर सुकर्ण ने अपने कर्मकरों को भेजा। वे उन्हें पकड़कर ले आए। मुनि ने देखा सामने देवी की मूर्ति है। स्थान-स्थान पर रक्त से सनी खोपड़ियां पड़ी हैं, वे समझ गये–मैं बलि के लिए लाया गया हूँ। उनके मन में न चिंता न भय। उन्हें बलि की वेदी पर ले जाकर खड़ा किया गया। वे कायोत्सर्ग कर ध्यानस्थ हो गये। सुकर्ण ने मंत्रोच्चारण किया। उसके मुख्य शिष्य चण्ड ने मुनि के वध के लिए तलवार उठाई। वह गले

तक पहुँचते-पहुँचते हाथ से गिर पड़ी। चण्ड भी गिर पड़ा। जितने धूप, दीप थे वे सब गिर पड़े। सुदर्शन मुनि अपने स्थान पर खड़े रहे। कुछ समय बाद कायोत्सर्ग संपन्न कर उन्होंने देखा कि सब लोग मूर्च्छित पड़े हैं। वे बाहर गये। प्रतीक्षा में खड़े मुनियों को साथ ले वे आगे चले गये।

मूर्च्छा टूटने पर सुकर्ण ने देखा और सोचा एक जैन मुनि से मैं परास्त हुआ हूँ। यह तो मेरा घोर अपमान हो गया है। उसने महाज्वाला की साधना प्रारंभ की। सात पुरुषों की बलि दी। महाज्वाला प्रकट हुई। उसने निर्देश दिया, महाज्वाला को—"सुदर्शन मुनि को अपने परिवार सहित जला डालो।" महाज्वाला वहां पहुँची। कुछ मुनि सुदर्शन के साथ-साथ चल रहे थे। एक वृद्ध मुनि कुछ आगे-आगे चल रहे थे। उनके पैरों के पास ज्वाला भभक उठी। वे उससे भस्म हो गये। मुनि सुदर्शन ने इस घटना को देखा और अपने साथी मुनियों को सावधान कर वे कायोत्सर्ग में खड़े हो गये। महाज्वाला ने मुनि गण के चारों ओर ज्वाला प्रज्ज्वलित की पर वह सुदर्शन मुनि के आभावलय तक नहीं पहुँच पा रही थी। वह अपने प्रयत्न में असफल होकर के लौट गई। उसने सुकर्ण से कहा—"मैं जल रही हूँ मुझे शांत करो।" सुकर्ण ने पूछा—सुदर्शन को जला डाला? नहीं जला सकी, महाज्वाला ने उत्तर दिया। सुकर्ण अपना धैर्य खो बैठा। अपने आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा—देवी! क्या तुम्हारी शक्ति नष्ट हो गई? ऐसा क्यों हुआ? महाज्वाला ने कहा—"उसके चारों ओर तैजस का अभेद्य कवच है, उसे भेदकर मैं भीतर नहीं जा सकी।"[३८]

यह आभावलय, यह तैजस कवच कायोत्सर्ग की शक्ति का प्रतिबिम्ब है। इस प्रकार का रक्षा कवच आत्म रक्षार्थ बनाने की विधि प्राचीनकाल में प्रचलित थी। साधक दूसरों के प्रहारों तथा उसके दुष्ट प्रयोगों से स्वयं की रक्षा करने हेतु सजग रहता है। वर्तमान में आचार्यों द्वारा बताई गई आत्मरक्षा विधि वज्रपंजर स्तोत्र व इन्द्र कवच के रूप में प्रचलित है।* नमस्कार महामंत्र, लोगस्स तथा कायोत्सर्ग में एक ऐसी अद्भुत शक्ति है जिससे साधक के चारों तरफ एक सुदृढ़ अभेद्य रक्षा कवच बन जाता है। कोई भी बाहरी शक्ति, आघात, प्रहार, भय, आतंक, रोग, मानसिक क्लेश, अशुभ शक्ति आदि के दुष्ट प्रयोग उसका बाल भी बांका नहीं कर सकते।

भगवान महावीर को वंदनार्थ जाते हुए सुदर्शन ने मार्ग में अपने सामने मुद्गर लेकर आते क्रुद्ध अर्जुनमाली को देखा। वह वहीं नमस्कार महामंत्र के ध्यान में तन्मय हो गया। ध्यानस्थ सुदर्शन पर उसका आक्रमण निष्फल हो गया। उसकी सुदृढ़ प्रतिरोधक शक्ति के समक्ष अर्जुनमाली के शरीर में स्थित यक्ष भी क्षणभर

---

* देखें परिशिष्ट १/१

नहीं टिक पाया, वह भाग गया और अर्जुनमाली भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ा।[३६]

शूलपाणी यक्ष ने भगवान महावीर को भयंकर कष्ट दिये। भगवान कायोत्सर्ग में स्थित हो गये। वे ध्यान कोष्ठक में चले गये। उस समय उस वज्रपंजर में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता था। निस्संदेह कायोत्सर्ग से वज्रपंजर का निर्माण होता है।

भेद विज्ञान की प्रक्रिया कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग बंधन मुक्ति की साधना का प्रयोग है। वह अवश्य करणीय प्रयोग है। साधक की प्रत्येक प्रवृत्ति के पश्चात कायोत्सर्ग की अनिवार्यता उसके महत्त्व को सुचित करती है। आवश्यक प्रवृत्ति के पश्चात इसकी अनिवार्यता है, इससे सहज एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि कायोत्सर्ग को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है? इस रहस्य पर जब दृष्टि अन्वेषण किया तो स्वतः समाधान मिला कि प्रवृत्ति प्राणी के साथ जुड़ी हुई है। प्रवृत्ति निवृत्ति से ही पूर्ण बनती है, निवृत्ति से ही प्रवृत्ति का मूल्य आंका जाता है।

प्रवृत्ति से चंचलता, चंचलता से थकान, थकान से तनाव बढ़ता है, उसका समाधान नींद या विश्राम है। जब नींद नहीं आती है तब व्यक्ति नींद की गोली की शरण में जाता है। कायोत्सर्ग थकान मिटाने और नींद दिलाने का कम्पोज मात्र नहीं है अपितु उसका आध्यात्मिक मूल्य भी सर्वोपरि है। कायोत्सर्ग भेद-विज्ञान की प्रक्रिया है। भेद-विज्ञान में ममत्व का विसर्जन और देहासक्ति का परिहार होता है। भेद विज्ञान एक ऐसा तत्त्व है जिससे दूसरी वस्तु को स्वयं से सर्वथा भिन्न किया जा सकता है। कायोत्सर्ग का बहुत बड़ा आध्यात्मिक रहस्य है—आत्मा और शरीर की भिन्नता का बोध और अनुभव। इस स्थिति में शरीर की कोई भी क्रिया या प्रतिक्रिया से आत्मा प्रभावित नहीं हो सकता। जैसे—

गजसुकुमाल मुनि के सिर पर अंगारे रख दिये गये फिर भी वे ज्यों के त्यों ध्यानस्थ खड़े रहे।[३७] कुंती नगर के राजा पुरुषसिंह के निर्देश से जल्लाद ने खंदक मुनि के शरीर की खाल उतारी उसके बावजूद भी वे ध्यान में लीन बने रहे। मेतार्य मुनि के सिर पर गीला चमड़ा बांधा गया। ज्यों-ज्यों चमड़ा सुखा मुनि के शरीर में असह्य वेदना हुई फिर भी समभाव से सहन की। मुनि स्कन्धक को पालक ने तिलों की तरह घाणी में पील दिया फिर भी उनके मुँह से उफ तक नहीं निकला। भगवान महावीर के साधना काल में अनेकों दंश उन्हें काटते, उनका रक्त पीते, मांस खाते उसके बावजूद भी वे ध्यानस्थ रहते। बाहुबली बारह महिने ध्यानस्थ खड़े रहे। उनके कंधों पर पक्षियों ने नीड़ बना दिये। हाथी अपनी खुजली मिटाने

के लिए उनके शरीर से घर्षण करते—ऐसी स्थिति में भी उनके ध्यान की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया।

सहसा यह बुद्धि गम्य नहीं होता कि क्या कोई इतने घोर कष्टों में समभाव रख सकता है, उन्हें सहजता से सह सकता है? जब ऑपरेशन में सूंघनी से, कृत्रिम मूर्च्छा व सम्मोहन से बड़े-बड़े ऑपरेशन हो सकते हैं तब भेद विज्ञान से क्यों नहीं हो सकते? कायोत्सर्ग के द्वारा चेतना और शरीर की भिन्नता महसूस होने लगती है तब शारीरिक क्रिया से आत्मा प्रभावित नहीं होती। जब मुनि साधना के द्वारा भेद विज्ञान का तत्त्व आत्मसात् कर लेता है तब वह अनुभव करता है—"नाऽहं देहश्चिदात्मेति" अर्थात् मैं चेतनावान हूँ शरीर नहीं हूँ। परन्तु शरीर को इतना साधना अत्यन्त कठिन है।

कायोत्सर्ग की फलश्रुतियां

साधना की निष्पत्ति अभ्यास, एकाग्रता और श्रद्धा से ही निखरती है। जैसे-जैसे अभ्यास सघन होता जाता है वैसे-वैसे व्यक्ति की आदतों में भी परिवर्तन होता जाता है, उसकी प्रकृति बदलने लगती है। आचार्य श्री महाश्रमणजी के शब्दों में "भक्ति योग में आदमी भक्ति तो करे किंतु साथ में गलत काम भी करे तो वह भक्ति सफल नहीं होती। जैसे दवा के साथ अनुपान का सिद्धान्त है वैसे ही भक्ति भी एक प्रकार की दवा है। उसका अनुपान है—सदाचार। भक्ति और सदाचार का ठीक योग हो जाये तो कल्याण का पथ स्वतः प्रशस्त हो जाता है।"

यदि निरन्तर अभ्यास चलता रहे तो कायोत्सर्ग से स्वभाव में परिवर्तन अवश्य आयेगा और मानवीय संबंधों के स्तर में भी अन्तर आयेगा। आचार्य भिक्षु एक श्वास में पूरे लोगस्स को आराम से बोल सकते थे। यह उनका साधा हुआ प्रयोग था।[४२] इसके निरन्तर अभ्यास से शरीर के भीतर एक ज्योति प्रस्फुटित होती है जिसका अनुभव स्वयं प्रयोग करके ही किया जा सकता है। आगमिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर अनेक प्रकार की फलश्रुतियां इस साधना के साथ संपृक्त हैं—

आध्यात्मिक फलश्रुतियां

- शरीर, पदार्थ व इंद्रिय-विषयों के प्रति होने वाली आसक्ति की न्यूनता
- कषाय की मंदता
- अभय का विकास
- सहनशक्ति का विकास
- वातावरण व परिस्थिति की अनुकूलता
- शत्रु का मित्र बनना
- आध्यात्मिक चेतना का जागरण

- चैतन्य के प्रति जागरूकता का विकास
- भेद विज्ञान
- अन्तर्दृष्टि का जागरण

आगमिक दृष्टि से फलश्रुतियां[४३]

- अतिचार का विशोधन
- हृदय की स्वस्थता और भारहीनता
- प्रशस्त ध्यान की उपलब्धि
- शुद्ध भाव से एक श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करने वाला आत्मा २,४५,४०८ पल्योपम देवलोक के शुभ आयुष्य का बंध करता है और अशुभ आयुष्य को निर्जरित करता है।
- एक नमस्कार मंत्र के आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करने वाला आत्मा १९,६३,२६१ पल्योपम प्रमाण देवगति के शुभ आयुष्य का बंधन करता है।
- एक लोगस्स के २५ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करने वाला आत्मा ६१,३५,२१० पल्योपम प्रमाण देवगति के शुभ आयुष्य का बंधन करता है।

शारीरिक फलश्रुतियां

- मांसपेशियों की कार्यक्षमता में वृद्धि
- उच्च रक्तचाप पर नियंत्रण
- हृदय की समस्याओं पर नियंत्रण
- कोलेस्ट्रोल की मात्रा में कमी
- शक्ति की सुरक्षा व संवर्धन
- शक्ति के अपव्यय पर नियंत्रण क्षमता का विकास

मानसिक फलश्रुतियां

- मानसिक संतुलन
- प्राणशक्ति व मनोबल का विकास
- रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास
- आभामंडल की सुन्दरता व स्वस्थता का विकास

भावनात्मक फलश्रुतियां

- मूर्च्छा का अल्पीकरण
- भावनात्मक नियंत्रण
- राग-द्वेष का अल्पीकरण

वैज्ञानिक दृष्टि से कायोत्सर्ग की फलश्रुतियां

- अल्फा तरंगों का निर्माण
- रासायनिक परिवर्तन
- तनाव विसर्जन

चौबीस तीर्थंकर की उत्कीर्तना के प्रमुख तीन प्रयोजन हैं–

१. दर्शन विशुद्धि
२. बोधिलाभ
३. कर्मक्षय

दर्शन विशुद्धि के द्वारा आदमी कल्याण के पथ को प्रशस्त कर सकता है और अपनी मंजिल को प्राप्त कर सकता है।[४४] मूर्च्छा को कम करने और दर्शन की विशुद्धि का एक सरल उपाय है–कायोत्सर्ग। उसमें लोगस्स का कायोत्सर्ग भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि अर्हत् स्तुति में तन्मय होने से कर्म चेतना कमजोर होने लगती है। यदि कर्म चेतना कमजोर होती जाये और ज्ञान चेतना विकसित होती जाये तो इस साधना से एक दिन चैतन्यमय और ज्ञानमय अस्तित्व का साक्षात्कार संभव हो पायेगा।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने अध्यात्म विद्या में लिखा है–ध्यान के द्वारा ऐसी ऊर्जा पैदा करें जिससे तीन तत्त्व उपलब्ध हो सकें।

१. राग-द्वेष को कम कर सके।
२. ग्रहों के विकिरण एवं कर्म के रस विपाक के प्रभाव को मंद कर सके।
३. यदि ग्रहों के विकिरण एवं कर्म रसायन का प्रभाव मंद न हो पाये, तो उसे झेलने की क्षमता को जगा सके।[४५]

उपरोक्त तीन बिंदुओं का आत्मविश्लेषण यदि पकड़ में आ जाये तो ये प्रेक्षा ध्यान एवं नई चेतना को जगाने वाले प्रयोग सिद्ध होंगे।

योग साधना के क्षेत्र में मंत्र का जप समरसीभाव अथवा समाधि के लिए किया जाता है इसलिए इस प्रक्रिया में सकलीकरण का मुख्य उद्देश्य हो जाता है–शरीर को विशिष्ट अर्हताओं की अभिव्यक्ति के योग्य बनाना। सकलीकरण की क्रिया में बाह्य शुद्धि, आन्तरिक एकाग्रता तथा न्यास–इन सबका समाहार होता है।

ध्याता ध्येय के स्वरूप में तन्मय होकर ही तद्रूप बन सकता है। शरीर की निर्मलता और शून्यता (कायोत्सर्ग की मुद्रा) में गये बिना कोई भी साधना करने वाला व्यक्ति गुण संक्रमण का पात्र नहीं बन सकता, ध्येय की विशेषता का अपने में अवतरण नहीं कर सकता। अतः कायोत्सर्ग को साधना की आधार भूमि माना गया है।

प्रयोग

१. दुःस्वप्न निवारण[४६]

- आसन
  सुप्त वज्रासन, मत्स्यासन, विपरीत करणी नौकासन, हृदयसूतंभनासन
- प्राणायाम
  दीर्घश्वास, उज्जाई, सूक्ष्म भस्त्रिका—५ मिनट
- प्रेक्षा
  दर्शन केन्द्र पर हरे रंग का ध्यान—१० मिनट
- अनुप्रेक्षा
  संकल्प—सोने से पहले ४ लोगस्स का ध्यान, सोते समय योग-निद्रा का प्रयोग—१५ मिनट
- जप
  चंदेसु निम्मलयरा १० मिनट
- मुद्रा
  नमस्कार मुद्रा

२. ध्यान
  लोगस्स का ध्यान

- प्रयोग विधि
  कायोत्सर्ग की मुद्रा
  रीढ़ की हड्डी और गर्दन सीधी रहे, आँखें कोमलता से बंद। श्वास के साथ चार लोगस्स का ध्यान करें।
- लाभ
  अतिशीघ्र नींद आती है, नींद में दुःस्वप्न नहीं आते।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आत्मा के जागरण अर्थात् परमात्मा के द्वार पर दस्तक देने के लिए संसार के घटते-बढ़ते व्यक्तित्व का बारीकी से अध्ययन होना अनिवार्य है क्योंकि परमात्मा के पास सुनने के लिए कान हो या न हो किंतु किसी के हृदय की स्पन्दना को ग्रहण करने के तार अवश्य हैं। उस तार को लोगस्स के कायोत्सर्ग के द्वारा आसानी से जोड़ा जा सकता है।

संदर्भ

१. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—पृ./१३४
२. अपना दर्पण अपना बिम्ब—पृ./६६

३. आवश्यक निर्युक्ति–४६५, ४६६, मन का कायाकल्य, पृ./६०
४. आवश्यक निर्युक्ति–पृ./६६, मन का कायाकल्प, पृ./६०
५. दसवैकालिक चूलिका–२/७ अभिक्खणं काउसग्गकारी
६. हारिभद्रीय टीका–पृ./२८१ कायोत्सर्ग कारी भवेत्, इर्यापथ प्रतिक्रमण कृत्वा न किञ्चिदन्यत् कुर्याद् तद्शुद्धतापतेः। (उधृत दसवैकालिक पृ./५७२)
७. उत्तराध्ययन–अध्ययन ३६
८. दसवैकालिक–५/१
९. अगस्त्यसिंग चूर्णि–काउसग्गेसु द्वितस्स कम्म निर्जरा भवतीति गमणागमणविहारदिसु अभिक्खणं काउसग्गकारिणा भवितत्वं। जिनदास चूर्णि–पृ./३७२, काउसग्गे ठियस्स, कम्मनिर्जरा भवइ, गमणागमण विहाराईसु अभिक्खणं काउसग्गे 'सऊसियं नीससिय' पडियव्व बाया।
१०. अपने घर में–पृ./२०६
११. वही–पृ./२०७, व्यवहार भाष्य पीठिका-गाथा ११८/६१६
१२. उत्तराध्ययन–२६/३८
१३. आवश्यक–प्रायश्चित सूत्र से
१४. आवश्यक निर्युक्ति–१५३७
१५. अपना दर्पण अपना बिम्ब–पृ./६८
१६. सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक में–पृ./६५-६६
१७. तुम स्वस्थ रह सकते हो–पृ./१३
१८. आवश्यक चूर्णि, पृ./३१
१९. हृदयरोग का एक बुनियादी उपचार एक नुतन सरल-अभिगम
२०. मिश्रा जे.पी.एन. एवं संजयकुमार, कायोत्सर्ग अल्फा तरंगों पर प्रभाव। ए.पी.वी.आइ. वार्षिक कॉन्फ्रेन्स, तिरुअनंतपुरम्-१९९३
२१. मिश्र जे.पी.एन.टेम्परेचर बायोफीड बेक; तुलसी-प्रज्ञा, जनवरी मार्च १९९५
२२. आवश्यक निर्युक्ति–१४७६
२३. उत्तराध्ययन–१९१३
२४. स्थानांग अभय वृत्ति–२३७
२५. तत्वानुशासन–२२२
२६. आवश्यक निर्युक्ति गाथा–१४५२
२७. ठाणं–१०
२८. अनुयोग द्वार
२९. प्रवचन सारोद्धार
३०. मूलाराधना, विजयोदया वृत्ति, १,११६
३१. आवश्यक निर्युक्ति १५४४
३२. आवश्यक निर्युक्ति १५४८/१५५२
३३. अमितगति श्रावकाचार–८/६९
३४. व्यवहार भाष्य–१२२, काल पणाणेण होंति नायत्वा

३५. वीतराग कल्प आचार्यश्री मधवा–पृ./४२
३६. अमितगिरि, श्रावकाचार-८/६६-६७
३७. मूलाराधना २, ११६, विजयोदयावृत्ति
३८. सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक में–पृ./६७-६८
३९. अन्तकृत
४०. अन्तकृत
४१. संवाद भगवान से–पृ./४५
४२. भिक्खू स्याम–कथ्य का तथ्य, XXI
४३. उत्तराध्ययन–२९/१३
४४. संवाद भगवान से–पृ./४५
४५. अध्यात्म विद्या–पृ./६८
४६. तुम स्वस्थ रह सकते हो–पृ./६६

१०. लोगस्स और तप

भारतीय धार्मिक प्रथाओं में व्रत को बहुत महत्त्व दिया गया है। जैन आगमिक दृष्टि से केवल निर्जरा के लिए तप का विधान है। आत्मशुद्धि के लक्ष्य से किये गये तप जप से प्रासंगिक फल के रूप में ऋद्धियां-सिद्धियां सहज ही अपना प्रभुत्व व वर्चस्व स्थापित कर लेती हैं सभी तीर्थंकरों ने कठोर तपस्याएं की। भरत चक्रवर्ती ने अपने पूर्वभव में ६६ लाख मासखमण किये तो श्रीकृष्ण वासुदेन ने अपने पूर्व भव में ९९ लाख मासखमण किये।

भारतीय धार्मिक प्रथाओं में व्रत (तप) को बहुत महत्त्व दिया गया है। विभिन्न जातियों के लोग अपने विशेष पर्वों पर व्रत अथवा उपवास करते हैं। व्रत उपवासों को इतना महत्त्व देने का दृष्टिकोण केवल धर्म या पुण्य के साथ ही नहीं जुड़ा है अपितु शारीरिक और मानसिक विकास के लिए भी अत्यन्त प्रभावशाली है।

जैन धर्म और तप

जैन आगमिक दृष्टि से केवल निर्जरा के लिए तप जप करने का विधान है। आत्मशुद्धि के लक्ष्य से किये गये तप जप से प्रासंगिक फल के रूप में ऋद्धियां-सिद्धियां सहज ही अपना प्रभुत्व व वर्चस्व स्थापित कर लेती हैं। भगवान महावीर ने तप का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है[1]–

१. नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा।
२. नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा।
३. नो कित्तिवण्णसद्द सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा।
४. नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा।

अर्थात् इहलोक (वर्तमान जीवन की भोगाभिलाषा) के निमित्त तप नहीं करना चाहिए। परलोक (पारलौकिक भोगाभिलाषा) के निमित्त तप नहीं करना चाहिए। परलोक (पारलौकिक भोगाभिलाषा) के निमित्त तप नहीं करना चाहिए।

कीर्ति, वर्ण, शब्द (लोक प्रसिद्धि), श्लोक (ख्याति) के लिए तप नहीं करना चाहिए। निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से तप नहीं करना चाहिए।

सभी तीर्थंकरों ने कठोर तपस्याएं की। उनके शासन में साधु-साध्वियां, श्रावक-श्राविकाएं भी कर्म निर्जरा हेतु विविध तपस्याएं करते हैं। इतिहास साक्षी है भरत चक्रवर्ती ने अपने पूर्वभव में ६६ लाख मास खमण किये तो श्रीकृष्ण वासुदेन ने अपने पूर्व भव में ६६ लाख मासखमण किये। भगवान ऋषभ ने एक वर्ष का कठोर तप तपा तो भगवान महावीर ने छदमस्थ अवस्था में १२ वर्ष व एक पक्ष की अवधि में सिर्फ ३५० दिन ही भोजन किया।

ध्यान और तप

निर्जरा (तप) के बारह प्रकार हैं। ध्यान उसके आभ्यन्तर भेदों में से एक है। अतएव ध्यान करना भी तपस्या है। जैन दर्शन के अनुसार ध्यान आभ्यन्तर तपस्या है। शरीर को स्थिर करना, मन को एकाग्र करना और अमन की स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करना ध्यान की साधना है। यह भी कर्म निर्जरा का एक सशक्त उपाय है। इस प्रकार कर्म निर्जरा के लिए तपस्या की आराधना आवश्यक है। तपस्या करने से व्यवदान होता है, कर्म कटते हैं और आत्मा निर्मल बन जाती है।[३] लोगस्स में शुद्धात्मा का वर्णन है उनके ध्यान से निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है। अतः ध्यान का दृढ़ अभ्यास हो जाने पर साधक को यह अनुभव करना आवश्यक है कि मैं परमात्मा हूँ, सर्वज्ञ हूँ, मैं ही साध्य हूँ, मैं ही सिद्ध हूँ, सर्व ज्ञाता और सर्वदर्शी भी मैं ही हूँ। मैं सत्-चिद्-आनंद स्वरूप हूँ, अज हूँ, निरंजन हूँ। इस प्रकार चिंतन करता हुआ साधक जब सब संकल्प-विकल्पों से विमुक्त हो अपने आप में विलिन हो जाता है, तब उसे निर्विकल्प ध्यान की या परम समाधि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शुद्ध स्वरूप आत्माओं को नमस्कार करने से, उनके स्वरूप का चिंतन और ध्यान करने से चित्त हल्का बनता है। प्राणी की उर्ध्वारोहण की यात्रा प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार लोगस्स का आध्यात्मिक वर्चस्व अखण्ड है।

लोगस्स और तप

व्रत (तप) में मंत्र से कई गुणा ज्यादा शक्ति है। परन्तु जब तप व जप दोनों का मणि कांचन योग मिल जाता है तो कर्मों की विशेष निर्जरा और शीघ्र कार्य-सफलता हस्तगत होने लगती है। जैन दर्शन में तप और जप का अनुष्ठान विशेष रूप से होता ही है पर भारतीय संस्कृति में भी तप व जप का विशिष्ट स्थान रहा है।

जैन आगमों का वाचन करने वाले मुनि अध्ययन (स्वाध्याय) के साथ-साथ उपधान (तप) करते हैं। नमस्कार महामंत्र का जप व स्मरण कर आगम वाचन प्रारंभ करते हैं, जिसका उद्देश्य है आगम ज्ञान का सम्यक् ग्रहण और आगम वाचन में निर्विघ्नता। प्रत्येक आगम के लिए अलग-अलग तप उपधान निश्चित हैं।

प्राचीन काल में चातुर्मास प्रवेश के दिन साधु-साध्वियां तप व मंत्र जप किया करते थे और वर्तमान में भी यह क्रम कुछ अंशों तक चल रहा है। पाप विशुद्धि के प्रायश्चित के रूप में भी आचार्य शिष्य को तप व स्वाध्याय का निर्देश देते हैं।

तप के साथ लोगस्स के जप अथवा कायोत्सर्ग की अनेक विधियों का उल्लेख गीतार्थ मुनियों द्वारा कथित है। यद्यपि निम्नोक्त विधियां आगमोक्त नहीं हैं पर लक्ष्य आत्मशुद्धि ही है।

१. वृहद ज्ञान पंचमी तप[३]–(बड़ी पंचमी)

- हेतु
  ज्ञान प्राप्ति
- समय
  कार्तिक शुक्ला पंचमी से प्रारंभ (प्रत्येक मास की शुक्ल पंचमी)
- अवधि
  पांच वर्ष छह मास
- मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं नमो नाणस्स
- तप
  चोविहार या तिविहार उपवास
- क्रिया
  प्रारंभ करें उस दिन ५१ लोगस्स का कायोत्सर्ग और ३१ वंदना प्रति उपवास में मंत्र की २१ माला, ५ लोगस्स का कायोत्सर्ग और ५ वंदना। उभयकाल सामायिक व प्रतिक्रमण करना (सुनना)। यदि उपवास के दिन क्रिया विधि पुरी न हो सके तो पारणे से पूर्व पूरी करनी होती है। बन सके तो पौषध करना चाहिए। अंतिम दिन के उपवास में प्रथम दिन के उपवास वत् क्रिया करनी होती है।

२. लघु ज्ञान पंचमी तप–(छोटी पंचमी)[४]

- हेतु
  ज्ञान प्राप्ति
- समय
  मृगसर, माघ, फाल्गुन, बैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ में से कोई भी मास की दोनों पंचमियां।
- अवधि
  पांच मास
- मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं नमो नाणस्स
- तप
  उपवास या आयम्बिल
- क्रिया
  पांच लोगस्स का कायोत्सर्ग, पांच वंदना, सवा लाख जप। पांच महिने में पूर्ण करना, तप के दिनों में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना।

३. अशोक वृक्ष तप[५]

- हेतु
  प्रसन्नता, निर्जरा
- समय
  प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की एकम् से पंचमी पर्यन्त, आषाढ़ शुक्ला से प्रारंभ।
- अवधि
  एक वर्ष
- मंत्र
  ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं
- तप
  एकासन और आयम्बिल अर्थात् एकासन एकान्तर और बीच में आयम्बिल या एकान्तर आयम्बिल और बीच में एकासन।
- क्रिया

बारह लोगस्स का कायोत्सर्ग, बारह वंदना, सवा लाख जप, तप की पूर्ण विधि तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन। उभयकाल सामायिक प्रतिक्रमण करें।

४. रोहिणी तप[६]

- समय
  जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो।
- अवधि
  सात वर्ष सात मास
- मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं वासुपूज्य सर्वज्ञाय नमः
- तप
  निर्विगय, आयम्बिल या उपवास
- क्रिया
  सवा लाख जप, उभयकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, ब्रह्मव्रत का पालन या पौषध, बारह लोगस्स का कायोत्सर्ग, बारह वंदना।

५. श्रुतदेव तप[७]

- समय
  शुक्ल पक्ष की एकादशी
- अवधि
  ग्यारह एकादशी या ग्यारह मास
- मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं नमो सुयदेवस्स
- तप
  मौन सहित उपवास
- क्रिया
  साढ़े बारह हजार जप, ग्यारह लोगस्स का कायोत्सर्ग, ग्यारह वंदना, ब्रह्मचर्य पालन या पौषध, उभयकाल सामायिक प्रतिक्रमण।

६. अखण्ड दशमी तप[८]

- समय
  प्रत्येक मास की शुक्ला दशमी
- अवधि
  दस मास
- मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं शीतलनाथाय नमः

- तप
  पौषधोपवास
- क्रिया
  साढ़े बारह हजार जप, दस वंदना, दस लोगस्स का जप उभयकाल प्रतिक्रमण।

७. एकादशांग तप[९]

- समय
  किसी भी मास शुक्ला या कृष्णा एकादशी
- अवधि
  ग्यारह मास
- मंत्र
  णमो सुयदेवस्स
- तप
  आयम्बिल, निर्विगय या उपवास
- क्रिया
  मौन युक्त साढ़े बारह हजार जप, ग्यारह वंदना, ग्यारह लोगस्स का कायोत्सर्ग।

८. चतुर्दश पूर्व तप[१०ध]

सारी क्रिया एकादशांग तप वत् हैं समय में एकादशी की जगह चतुर्दशी अवधि ग्यारह मास की तरह चौदह मास जानना।

९. पंचामृत तेला[११]

- समय
  किसी भी मास की शुक्ल पक्ष की एकम्, बीज, तीज।
- अवधि
  पांच मास (कारण वश सात, छह मास)
- मंत्र
  णमो सिद्धाणं
- तप
  पांच अट्ठम् तप (तेला)
- क्रिया
  मौन युक्त सवा लाख जप, संवर या पौषध, उभयकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, आठ वंदना, आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग।

१०. छह मासी या चार मासी तप[१२]

छह-छह महिने तक (दो बार) एकान्तर उपवास या इच्छानुसार १८० उपवास करने से छहमासी तप होता है, इसी प्रकार १२० उपवास करने से चौमासी तप होता है।

- मंत्र
  "श्री वर्धमान तीर्थंकराय नमः" अथवा "ॐ महावीर स्वामी तीर्थंकराय नमः" मंत्र की दस माला।
- क्रिया
  बारह लोगस्स का कायोत्सर्ग, बारह वंदना

११. संसार शृंखला उच्छेदक तप[१३]

- समय
  मास की दोनों एकादशिया
- अवधि
  ग्यारह वर्ष
- मंत्र
  ॐ परिब्रह्मणे नमः
- तप
  पौषधोपवास
- क्रिया
  मौन युक्त सवा करोड़ जप, उभयकाल प्रतिक्रमण, ग्यारह वंदना, ग्यारह लोगस्स का कायोत्सर्ग, संसार भावना का यथाशक्ति चिंतन, सिद्ध भगवान के गुणों की स्तुति

१२ कषाय जय तप[१४]

- अवधि
  सोलह दिन या बीस दिन
- मंत्र
  ॐ निरंजनाय नमः
- तप
  निर्विगय, आयम्बिल और उपवास की चार आवृत्ति
- क्रिया
  सवा लाख जप, सोलह वंदना, सोलह लोगस्स का कायोत्सर्ग

१३. ज्ञानाराधना तप[१५]

- तप
  तेला या एकान्तर तीन उपवास और दो आयम्बिल
- जप
  णमो नाणस्स बारह हजार जप
- क्रिया
  पांच लोगस्स का कायोत्सर्ग, पांच वंदना
  नोट–इसी प्रकार दर्शनाराधना व चारित्राराधना की विधि है–मंत्र-णमो दंसणस्स, णमो चरित्तस्स।

१४. नमस्कार तप[१६]

नमस्कार महामंत्र के प्रत्येक पद के जितने अक्षर उतने उपवास उसी पद की इक्कीस माला और अपने-अपने गुणों के अनुरूप क्रमशः १२, ८, ३६, २५, २७ लोगस्स का कायोत्सर्ग।

१५. परमेष्ठी गुण तप[१७]

तप	जप	कायोत्सर्ग	वंदना
श्वेत वर्ण के १२ आयम्बिल	णमो अरहंताणं, २० माला	१२ लोगस्स का	१२ वंदना
लाल वर्ण के ८ आयम्बिल	णमो सिद्धाणं ८ माला	८ लोगस्स का	८ वंदना
पीत वर्ण के ३६ आयम्बिल	णमो आयरियाणं, ३६ माला	३६ लोगस्स का	३६ वंदना
हरित वर्ण के २५ आयम्बिल	णमो उवज्झायाणं, २५ माला	२५ लोगस्स का	२५ वंदना
श्याम वर्ण के २७ आयम्बिल	णमो लोए सव्व साहूणं, २७ माला	२७ लोगस्स का	२७ वंदना

यह तप एकान्तर आयम्बिल के रूप में भी किया जा सकता है और एक-एक पद की एक-एक ओली के रूप में भी किया जा सकता है।

१६. अष्टकर्म सूदन तप[१८]

इस तप में सिद्ध भगवान के आठ गुणों का क्रमशः जप किया जाता है जिसकी विधि निन्न प्रकार से है–

कर्म	तप	लोगस्स का ध्यान	मंत्र
१. ज्ञानावरणीय	उपवास	पांच	ॐ ह्रीं अनंत-ज्ञान गुणेभ्यो नमः की २० माला
२. दर्शनावरणीय	एकासन	नौ	ॐ ह्रीं अनंत-दर्शन गुणेभ्यो नमः की २० माला
३. वेदनीय	एगलसिथं (एक अन्न का दाना ही खाया जा सके)	दो	ॐ ह्रीं अव्याबाध गुणेभ्यो नमः की २० माला
४. मोहनीय	एकलठाणा	अट्ठाईस	ॐ ह्रीं यथाख्यात गुणेभ्यो नमः की २० माला
५. आयुष्य	एक दत्ति (एक बार में एक साथ जो मिले वही खाना)	चार	ॐ ह्रीं अक्षयनिधि गुणेभ्यो नमः की २० माला
६. नाम	निर्विगय	एक सौ तीन	ॐ ह्रीं अरुपगुणेभ्यो नमः की २० माला
७. गोत्र	आयंबिल	दो	ॐ ह्रीं अगुरुलघु गुणेभ्यो नमः की २० माला
८. अन्तराय	अष्ट कवल (सिर्फ ८ ग्रास)	पांच	ॐ ह्रीं अनंत वीर्य गुणेभ्यो नमः की २० माला

१७. बीस स्थानक ओली तप (तीर्थंकर गोत्र तप)[१६]

- समय
  बीस-बीस दिन की बीस ओली
- अवधि
  एक ओली एकान्तर से करें तो जघन्य ४० दिन और उत्कृष्ट ६ मास।
- मंत्र और क्रिया

मंत्र	माला	कायोत्सर्ग	वंदना
१. णमो अरहंताणं	२१	१२ लोगस्स	१२
२. णमो सिद्धाणं	२१	१५ या आठ लोगस्स	१५ या ८
३. णमो पवयणस्स	२१	८ लोगस्स	८
४. णमो आयरियाणं	२१	३६ लोगस्स	३६
५. णमो थेराणं	२१	१५ या २५ लोगस्स	१५ या २५

मंत्र	माला	कायोत्सर्ग	वंदना
६. णमो उवज्झायाणं	२१	२५ लोगस्स	२५
७. णमो लोए सव्व साहूणं	२१	२७ लोगस्स	२७
८. णमो नाणस्स	२१	५ लोगस्स	५
९. णमो दंसणस्स	२१	६७ लोगस्स	६७
१०. णमो विणयसंपण्णाणं	२१	१० लोगस्स	१०
११. णमो चरित्तस्स	२१	६ या १३ लोगस्स	६ या १३
१२. णमो बंभवय धारीणं	२१	९ लोगस्स	९
१३. णमो किरियाणं	२१	२५ लोगस्स	२५
१४. णमो तवस्सीणं	२१	१५ या १२ लोगस्स	१५ या १२
१५. णमो गोयमस्स	२१	१७ लोगस्स	१७
१६. णमो जिणाणं	२१	१० लोगस्स	१०
१७. णमो चरणस्स	२१	१२ लोगस्स	१२
१८. णमो अपुव्वनाणस्स	२१	५ लोगस्स	५
१९. णमो सुयनाणस्स	२१	१० लोगस्स	१०
२०. णमो तित्थयरस्स	२१	५ या १५ लोगस्स	५ या १५

- तप

  उपवास (एकान्तर) या आयम्बिल या एकासन (निरन्तर अथवा एकान्तर यथाशक्ति)

१८. सिद्ध भक्ति तप की विधि

यह तप २५ दिन का किया जाता है। इसमें आठ द्रव्यों से अधिक उपयोग में नहीं लिये जाते हैं। रात्रि भोजन का त्याग, कच्चा पानी नहीं पीना, ब्रह्मचर्य का पालन करना। यथाशक्ति एकासन या बियासन करना। पहले दिन "नमो उसभस्स" 'णमो ऋषभदेवाय' की इक्कीस माला फेरना। सिद्ध भगवान के आठ गुणों को याद करते हुए आठ वंदना करना*। आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग और ऋषभदेव

* सिद्ध भक्ति की आठ वंदना–

१. अनंत ज्ञान गुण से युक्त विराजमान ऋषभदेव भगवान को मेरी वंदना। मत्थएण वंदामि।

२. अनंत दर्शन गुण से युक्त विराजमान ऋषभदेव भगवान को मेरी वंदना। मत्थएण वंदामि।

इसी प्रकार एक-एक गुण को बोलकर क्रमशः आठ बार ऋषभ देव भगवान को वंदना करना। वे गुण–अव्याबाध सुख गुण से युक्त, क्षायिक सम्यक्त्व गुण से युक्त, अमरता गुण से युक्त, अमूर्त्त गुण से युक्त, अगुरुलघु गुण से युक्त, अनंत शक्ति से युक्त।

नोट–जिस दिन जिस तीर्थंकर भगवान की भक्ति हो उस दिन उस भगवान का नाम जोड़कर वंदना की जाती है और २५वें दिन 'सिद्ध भगवान' का नाम जोड़कर वंदना की जाती है।

का कोई एक गीत बोलना। ऐसे क्रमशः दूसरे दिन दूसरे तीर्थंकर भगवान के नाम की २१ माला गिनना। ऐसे चौबीसवें दिन तक क्रमश एक-एक तीर्थंकर की २१-२१ माला गिनना। शेष क्रियाएं पहले दिन के समान करना। पच्चीसवें दिन 'नमो सव्व सिद्धाणं' की इक्कीस मालाएं गिनना, शेष क्रिया पूर्ववत्।

१६. कल्याण तप[२०]

प्रत्येक तीर्थंकर के पांच कल्याणक होते हैं–

१. च्यवन (गर्भ में आना)
२. जन्म
३. दीक्षा
४. केवल-ज्ञान
५. निर्वाण

इन सबकी गणना करने पर चौबीस तीर्थंकरों के १२० कल्याणक होते हैं। इन १२० कल्याणकों की तिथियों* में इस तप का साधक उपवास करता है या एकासन करता है। जो साधक उपवास के द्वारा इन पंच कल्याणक तिथियों की आराधना करना चाहता है वह मार्गशीर्ष शुक्ला दसम् और एकादशमी का बैला करके प्रारंभ करता है। जो साधक एकासन के द्वारा इन पंच कल्याणकों की आराधना करना चाहता है, वह मार्गशीर्ष शुक्ला दसमी को आयम्बिल करता है और एकादशी को उपवास करता है। एक दिन में एक कल्याणक हो तो एकासन करने वाला साधक एकासन करता है। एक दिन दो कल्याणक हो तो नीवी करता है। एक दिन में तीन कल्याणक हो तो आयम्बिल करता है। एक दिन में चार कल्याणक हो तो उपवास करता है।

उपवास करने वाले साधक की चर्या इस प्रकार है–

एक दिन में एक कल्याणक हो तो उपवास करता है। एक दिन में दो, तीन कल्याणक हो तो वह उसकी आराधना दूसरे वर्ष में करता है।

जप–

च्यवन कल्याणक के दिन 'अर्हते नमः' इस मंत्र की २० माला या दो हजार जप करता है।

दीक्षा कल्याणक के दिन 'नाथाय नमः' इस मंत्र को दो हजार जप करता है।

केवल-ज्ञान के दिन 'सर्वज्ञाय नमः' इस मंत्र को दो हजार जप करता है। निर्वाण कल्याणक के दिन 'पारंगताय नमः' इस पद को दो हजार जप करता है।

---

* किस महिने में कौन से तीर्थंकर का कौन-सा कल्याणक है, इसके लिए देखें परिशिष्ट–१/२

नोट–

जिस कल्याणक में जिस तीर्थंकर का च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान या निर्वाण दिन हो उस दिन उस तीर्थंकर का नाम मंत्र-जप से पूर्व जोड़ देना चाहिए। जैसे आज महावीर स्वामी का निर्वाण कल्याणक दिन है, तो आज साधक 'महावीर पारंगताय नमः' इस पद का दो हजार जप करेगा। पद्मप्रभु के जन्म कल्याणक के दिन 'पद्मप्रभार्हते नमः' पद का जप करेगा।

जिज्ञासा

लोगस्स का पाठ दूसरे आवश्यक के रूप में है तो इसे प्रतिक्रमण के सिवाय अन्य समय में क्यों पढ़ा जाता है।

समाधान

आवश्यक सूत्र के पाठ मात्र प्रतिक्रमण के ही पाठ नहीं है, किंतु अन्य क्रियाओं के साथ भी जुड़े हुए हैं। जब भी अपेक्षित हो तब इसके पाठों का उपयोग किया जा सकता है। आवश्यक सूत्र के पाठों का चार प्रकार से उपयोग किया जा सकता है–

१. आवश्यक क्रियाओं के लिए
२. प्रतिक्रमण के रूप में
३. स्वाध्याय के लिए
४. ध्यान के लिए

कुछ प्रतिज्ञा पाठ भी हैं अतः उनका प्रतिज्ञा ग्रहण करते समय उपयोग किया जाता है। लोगस्स पाठ का चारों रूप में उपयोग किया जाता रहा है।

१. जब ईरियावहिय का प्रतिक्रमण आदि दैनिक आवश्यक क्रियाओं की दोष-निवृत्ति के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है, तब कायोत्सर्ग संपन्न करने के बाद उन क्रियाओं में तीर्थंकर भगवान की स्तुति के रूप में लोगस्स का पाठ बोला जाता है।

२. प्रतिक्रमण में दूसरे आवश्यक के रूप में लोगस्स का पाठ बोला जाता है।

३. सभी साधु-साध्वियां स्वाध्याय करना चाहते हैं। सभी को अन्य आगम कंठस्थ नहीं होते। कदाचित् याद हो तो भी उनकी आवृत्ति करना सुगम नहीं होता, तब लोगस्स के पाठ की आवृत्ति करके स्वाध्याय की पूर्ति की जाती है।

प्रायश्चित उतारने के लिए स्वाध्याय करते हैं वे गाथाओं की संख्या की गिनती कैसे करते हैं? यह भी समझने की बात है।

लोगस्स की ३२ अक्षर की एक गाथा की अपेक्षा से आठ गाथाएं होती हैं। एक माला में लोगस्स की ८६४ गाथाओं की स्वाध्याय हो जाती है। दो माला और ऊपर ३४ लोगस्स गिनने से दो हजार गाथाओं की स्वाध्याय हो जाती है। इसी प्रकार पूरे नमस्कार महामंत्र की एक माला में २२६ गाथा लगभग हो जाती हैं। अतएव नौ माला गिनने से २००० से ऊपर गाथाओं की स्वाध्याय हो जाती है। (नमस्कार महामंत्र में ६८ अक्षर हैं। ६८ अक्षर की दो गाथा और चार अक्षर ऊपर होते हैं।) नमोत्थुणं की आठ गाथा और २४ अक्षर अधिक होते हैं। उसकी दो माला और चौदह णमोत्थुणं ओर गिनने पर २००० गाथाओं की स्वाध्याय हो जाती है। प्रायश्चित आदि की विशुद्धि के लिए इस रूप में भी स्वाध्याय मान्य है।

४. प्रतिक्रमण के पांचवें कायोत्सर्ग आवश्यक में—लोगस्स सूत्र का स्मरण किया ही जाता है किंतु शेष समय नवपद आराधना आदि तपों में भी ध्यान के समय लोगस्स सूत्र का ही उपयोग करने की परम्परा है। इसके अलावा स्वप्नादिक-दोष आदि के प्रायश्चित की विशुद्धि के लिए विविध संख्या में लोगस्स सूत्र का ही उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अध्यात्म के क्षेत्र में निर्जरा की प्रक्रिया कर्म मल के विशोधन की प्रक्रिया है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित निर्जरा के बारह प्रकार/तपस्याओं के कारण विवक्षित है। निर्जरा का दसवां प्रकार स्वाध्याय, (जिसमें जप का समावेश हो जाता है) ग्यारहवां प्रकार ध्यान तथा पहला प्रकार अनशन का है। जब तपस्या (अनशन) के साथ नमस्कार महामंत्र अथवा लोगस्स मंत्र का जप तथा ध्यान किया जाता है तो इस मणि-काञ्चन योग का ऐसा जादुई प्रभाव होता है कि बाह्य और आन्तरिक मल अतिशीघ्र विसर्जित होने लगते हैं। उनसे प्रक्षालित और विशोधित होकर चेतना उसी प्रकार निर्मल बन जाती है जिस प्रकार अग्नि से तपा सोना।

संदर्भ

१. दसवैकालिक—६/४/
२. संवाद भगवान से—पृ./३६
३. विनय आराधना—पृ./२१६
४. वही—पृ./२१६
५. वही—पृ./२२०
६. वही—पृ./२२०

७. वही—पृ./२२१
८. वही—पृ./२२१
९. वही—पृ./२२३
१०. वही—पृ./२२३
११. वही—पृ./२२३-२२४
१२. वही—पृ./२२५
१३. वही—पृ./२२५
१४. वही—पृ./२२६
१५. वही—पृ./२२७
१६. वही—पृ./२३२, समतावाणी पृ./४०१
१७. विनय आराधना—पृ./२३२
१८. वही—पृ./२२९, समतावाणी पृ./३६९
१९. समतावाणी—पृ./३९४.३९५
२०. जैन साधना पद्धति में तपोयोग—पृ./५८-५९

११. लोगस्स का वर्षीतप

अर्हत् ऋषभ की तपस्या के आधार पर वर्षीतप की परम्परा चल रही है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार वर्षीतप के अनेक प्रयोग हो सकते हैं जो आध्यात्मिक विकास के लिए प्रासंगिक हैं–

१. एक वर्ष तक प्रतिदिन तीन घंटा कायोत्सर्ग का प्रयोग करें।
२. एक वर्ष तक प्रतिदिन तीन घंटा ध्यान का प्रयोग करें।
३. एक वर्ष में किसी भी समय असहिष्णुता का भाव आने पर दूसरे दिन उपवास करें।
४. एक वर्ष में उत्तेजना पूर्ण व्यवहार होने पर दूसरे दिन उपवास करें।
५. एक वर्ष में अनुशासन और व्यवस्था का अतिक्रमण होने पर दूसरे दिन उपवास करें।[1]

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी का चिंतन तथा ऐसा मानना था कि वर्षीतप की तरह मौन व समता का वर्षीतप भी करें। इस प्रकार कुछ आचार्यों ने स्वाध्याय तथा मंत्र जप की दृष्टि से लोगस्स का वर्षीतप करने का भी निर्देश दिया है।

लोगस्स का वर्षीतप

वर्षीतप के समान लोगस्स का वर्षीतप करने वाले भाई-बहन चैत्र कृष्णा ८ से प्रारंभ करें। नीचे बारह महिनों के कोष्ठक दिये हैं। उनमें क्रम से प्रत्येक तारीख के पास एक संख्या लिखी हुई है। माह की उस तारीख को लिखी हुई संख्या के अनुसार लोगस्स का जाप करें। यथा जनवरी की एक तारीख को ५४ लोगस्स का, २ को २७ का...इसी तरह जाप करें।

यह वर्षीतप दो वर्ष तक करने का लक्ष्य रखें।

जनवरी

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

फरवरी

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४				

मार्च

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

अप्रैल

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४

मई

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

जून

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४

जुलाई

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१०	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

अगस्त

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

सितम्बर

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४

अक्टूबर

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

नवम्बर

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४

दिसम्बर

१	५४	२	२७	३	५४	४	६	५	५४	६	५४
७	५४	८	१८	९	५४	१०	६	११	५४	१२	२७
१३	५४	१४	५४	१५	५४	१६	६	१७	१८	१८	५४
१९	२७	२०	१८	२१	२७	२२	६	२३	५४	२४	१८
२५	८	२६	२७	२७	५४	२८	५४	२९	९	३०	५४
३१	२७										

संदर्भ—समतावाणी

१२. ग्रह शांति और तीर्थंकर जप

ज्योतिष के द्वारा किसी ग्रह के संबंध में पूर्व जानकारी हासिल करके रक्षात्मक कार्यवाही के द्वारा व्यक्ति अपनी सुरक्षा कर सकता है। जैसे ज्योतिष के द्वारा किसी ग्रह के विपरीत प्रभाव की जानकारी मिली तो तप, जप, ध्यान आदि से उस ग्रह के परिणाम में परिवर्तन लाया जा सकता है।

भारत के प्राचीन ऋषियों एवं दिव्य द्रष्टाओं ने अपनी अद्‌भुत ज्ञान क्षमता के बल पर नभमंडल का अध्ययन किया और उसका संबंध मनुष्य से जोड़कर जो विधान बनाया, वह ज्योतिष के नाम से स्थापित हो गया। ज्योतिष-विज्ञान, दर्शन-शास्त्र का एक अंग है, जिसका अध्ययन बहुत सूक्ष्म एवं गहन है।

ज्योतिष के संबंध में जन धारणा कुछ भी रही हो लेकिन इनके मूल तथ्यों की सच्चाई को कोई इन्कार नहीं कर सकता। यह सर्वविदित तथ्य है कि सूर्य, चन्द्रमा अन्य ग्रहों की रश्मियां पृथ्वी पर पड़ती हैं। यही कारण है कि पुष्प प्रातः खिलते हैं, सायं सिमट जाते हैं। बिल्ली की नेत्र पुतलियां चन्द्रकला के अनुसार घटती बढ़ती रहती हैं। मनुष्य की राशि उनके मनोमस्तिष्क, व्यवहार और सम्पूर्ण स्वभाव का एक्स-रे है।

प्राचीन आचार्यों ने अपनी नाम राशि के अनुसार नमस्कार महामंत्र के मंत्रों का नियोजन किया है, जिसके द्वारा अपने गुणात्मक पक्ष को उजागर रखा जा सकता है।

बारह राशियों, तथा उससे संबंधित शरीर के अंग-प्रत्यंग[1] तथा महामंत्र का जप[2], अपनी राशि के अनुसार, निम्न चार्ट से समझकर लाभान्वित हुआ जा सकता है—

	राशि	शरीर के अंग-प्रत्यंग	मंत्र जप
१.	मेष राशि	सिर (चेहरा, नेत्र, दांत, कान आदि)	ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं
२.	वृषभ राशि	गला, कण्ठ, चेहरा	ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं
३.	मिथुन राशि	वक्ष स्थल, बाहु, कंधा	ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं
४.	कर्क राशि	हृदय, सीना, फेफड़े कोहनी	ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं
५.	सिंह राशि	उदर, पीठ, बाहु का नीचे का भाग	ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं
६.	कन्या राशि	कमर, हाथ, ऊपर का वह भाग जिसमें लीवर और आंते स्थित हों	ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं
७.	तुला राशि	किडनी, पेट के नीचे का भाग	ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं
८.	वृश्चिक राशि	मल व मूत्र द्वार	ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं
९.	धनु राशि	जांघ नितम्ब	ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं
१०.	मकर राशि	गेडुना	ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं
११.	कुम्भ राशि	नितम्ब, पैर	ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं
१२.	मीन राशि	चरण, हड्डी	ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं

सौर मंडल और शरीर

सौर मंडल से आने वाले विकिरण हमारे प्रत्येक कार्य को प्रभावित करते हैं। जैसे ज्योतिष का सौर मंडल है वैसे ही अध्यात्म का भी सौर मंडल है। जैसे ज्योतिष में नवग्रह माने जाते हैं वैसे अध्यात्म में भी नवग्रह सम्मत्त हैं[३]—

अध्यात्म के नौ ग्रह	ज्योतिष के नौ ग्रह
ज्योति-केन्द्र (दायां मस्तिष्क)	गुरु का क्षेत्र
दर्शन-केन्द्र (लघु मस्तिष्क) आज्ञा चक्र	बुध का क्षेत्र
शक्ति-केन्द्र	राहु, बुध का क्षेत्र
आनंद-केन्द्र (अनाहत चक्र)	मंगल का क्षेत्र
विशुद्धि-केन्द्र (विशुद्धि चक्र)	चन्द्रमा का क्षेत्र
स्वास्थ्य-केन्द्र (स्वाधिष्ठान चक्र)	शुक्र का क्षेत्र
तैजस-केन्द्र	सूर्य का क्षेत्र
ज्ञान-केन्द्र (सहस्रार-चक्र)	शनि का क्षेत्र
शांति-केन्द्र	केतु का क्षेत्र

उपरोक्त सारे विवरण को मानव शरीर में चेतना केन्द्र और ग्रहों का आधिपत्य—इस चार्ट[४] से सुगमता पूर्वक समझा जा सकता है कि सारा सौर मंडल हमारे शरीर के भीतर ही है।

मानव शरीर में चेतना केन्द्र और ग्रहों का आधिपत्य

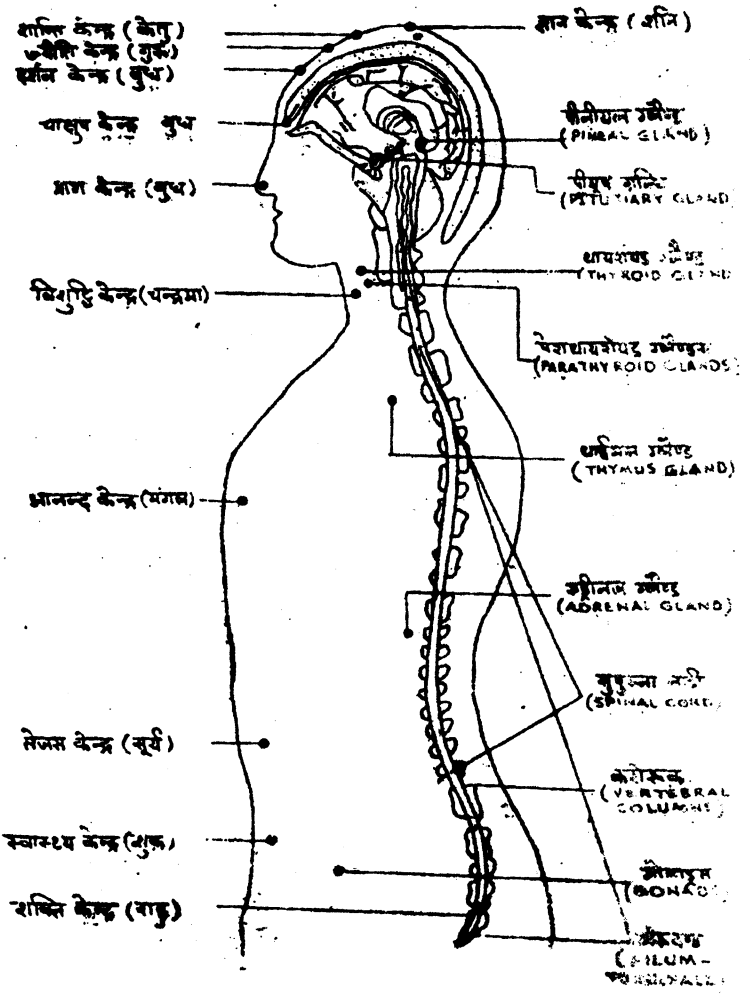

जब हमारा संज्ञान (चेतना) आत्मा से संपर्क स्थापित कर लेता है या यों कहा जाए कि इलेक्ट्रॉन नाभिक में विलीन हो जाता है तो स्थिति बदल जाती है उस समय व्यक्ति की क्षमता सूर्य की तरह शरीर के अणु-अणु में प्रखर हो उठती है। लौकिक दृष्टि से सूर्य के गुण धर्म और शरीर में जो नाभिक—Nucleus है उसके गुण धर्म समान है। हम उस दुनियां में जी रहे हैं जहां एक वस्तु का प्रभाव

दूसरे पर पड़ता हे। किसी व्यक्ति के जीवन में कोई भी घटना अच्छी या बुरी होती है तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा होना आकाश में ग्रहों की स्थिति व स्वयं की दशा, जन्म के ग्रहों पर असर करती है, उस पर निर्भर करता है। सृष्टि में अदृश्य कण से लेकर विकसित जीवन तक सभी एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। चाँद, सितारें, सूरज की स्थिति, आकाश गंगाएं, चन्द्र व सूर्य ग्रहण सभी जीवन पर बहुमुखी प्रभाव छोड़ते हैं।

ज्योतिष भाग्यवाद अर्थात् अवश्य भावितव्यता का समर्थन नहीं करता। किसी विद्वान ने कहा भी है—"केवल मूर्ख ग्रहों का अनुकरण करते हैं, बुद्धिमान तो उस पर नियंत्रण करते हैं"।[५] ज्योतिष के द्वारा किसी ग्रह के संबंध में पूर्व जानकारी हासिल करके रक्षात्मक कार्यवाही द्वारा व्यक्ति अपनी सुरक्षा कर सकता है। जैसे ज्योतिष के द्वारा किसी ग्रह के विपरीत प्रभाव की जानकारी मिली तो तप, जप, ध्यान आदि से उस ग्रह के परिणाम में परिवर्तन लाया जा सकता है।

विज्ञान के अनुसार सभी ग्रहों की किरणें पृथ्वी से टकराती हैं और जीव, निर्जीव सभी पर अपना प्रभाव डालती हैं। कोई भी ग्रह, नक्षत्र या तारा उदय होते समय या अस्त होते समय अथवा स्थान बदलते समय—ऐसे समयों में उनकी किरणों का कोण—Angle बदलता है। तब हमारे रक्त की धाराओं के संचालन में तीव्रता, धीमापन अथवा बदलाव आता है। उनका अन्य अंगों पर भी व्यापक असर होता है।[६] ग्रहों की किरणों का अंश हमारे शरीर में विद्यमान रहता है। इनकी प्रकृति के अनुसार हमारे शरीर में शुभ-अशुभ जो कुछ भी घटित होता है उन्हें अनुकूल या शांतिमय करने हेतु ही प्राचीन मनीषियों ने तीर्थंकरों के जप, महामंत्र का जप तथा चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान आदि की पद्धतियां अपने अनुभव द्वारा विकसित कीं। जिनके द्वारा उनके चेतन तत्त्व को जागृत करके उनके दुष्प्रभावों को दूर किया जाता है।

ग्रह शांति और तीर्थंकर जप (रंगों और अध्यात्म ग्रहों के साथ)

तीर्थंकरों के नाम परम मांगलिक हैं। इनका जप मंत्राक्षर के रूप में करते हुए चित्त को नासाग्र पर केन्द्रित करें क्योंकि नाक का संबंध पेरिनियम (मूलाधार) से होता है। नासाग्र पर ध्यान लगाने से प्रवृत्तियां नासाग्र से पेरिनियम तक चली जाती हैं। दूसरी बात ध्यान देने की है कि तीर्थंकरों के मंत्र का प्रयोग भौतिक सिद्धि के लिए नहीं हुआ है चेतना का जागरण उसका प्रमुख उद्देश्य रहा है साथ में विघ्न बाधाएं भी अपने-आप दूर हो जाती हैं। ग्रह शांति के लिए तीर्थंकर भगवन्तों का जप अथवा महामंत्र नवकार का जप करते समय यह भावना रहनी

चाहिए मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है। यदि यह विशुद्ध उद्देश्य स्पष्ट रहेगा तो कर्म निर्जरा के साथ-साथ अनुकूलताएं स्वतः चरण चूमेंगी।

ग्रह शांति	तीर्थंकर जप
सूर्य	ॐ ह्रीं पद्मप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। लाल रंग की माला से पूर्वाभिमुख, ७००० जप।
चन्द्र	ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। श्वेत रंग की माला से उत्तराभिमुख, ६००० जप।
मंगल	ॐ ह्रीं वासुपूज्य प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। लाल रंग की माला से पूर्वाभिमुख, ८००० जप।
बुध	ॐ ह्रीं शांतिनाथ प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। श्वेत रंग की माला से पूर्वाभिमुख, १२००० जप।
शुक्र	ॐ ह्रीं सुविधि नाथ प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। श्वेत रंग की माला से ११००० जप (पूर्वाभिमुख)
शनि	ॐ ह्रीं मुनि सुव्रत प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। नीले रंग की माला से पश्चिमाभिमुख, ३२००० जप।
केतु	ॐ ह्रीं पार्श्वप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। नीले रंग की माला से पूर्वाभिमुख, २१००० जप।
राहु	ॐ ह्रीं नेमिनाथ प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। नीले रंग की माला से पूर्वाभिमुख अथवा पश्चिमाभिमुख २१००० जप।

इसी प्रकार सूर्य ग्रह शांति के लिए 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' तैजस-केन्द्र पर अरूण रंग में, चन्द्र ग्रह शांति के लिए विशुद्धि-केन्द्र पर श्वेत रंग में 'ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं' का जप, मंगल ग्रह शांति के लिए आनंद-केन्द्र पर अरुण रंग में 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' का जप, बुद्ध ग्रह शांति के लिए शक्ति-केन्द्र पर हरे रंग में 'ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं' का जप, गुरु ग्रह शांति के लिए दर्शन-केन्द्र पर पीले रंग में 'ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं' का जप, शुक्र ग्रह शांति के लिए स्वास्थ्य-केन्द्र पर श्वेत रंग में 'ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं का जप अपने-अपने रंग की माला के साथ करने से ग्रहों की शांति एवं अनुकूलता बनी रहती है। जिसके कारण बाह्य और आभ्यन्तर गुणों को विकसित किया जा सकता है।[८]

नोट–

जिस ग्रह की शांति के लिए जप किया जाता है प्रारंभ में इक्कीस दिन तक उस रंग की माला के साथ उस मंत्र की प्रतिदिन दस-दस माला फेरने के पश्चात् प्रतिदिन एक माला फेरने का विधान मिलता है।

ग्रह और रंग

सौर किरणों एवं प्रकृति में विद्यमान रंगों की शोध करने वाले वैज्ञानिकों का मत है कि भिन्न-भिन्न रंग व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति के आधार पर अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। रंगों का असर विशेष के अनुरूप किस प्रकार चुना जाये, इसका आधार उनसे उत्पन्न संवेदन प्रक्रिया ही है।

ज्योतिष शास्त्र में भी सभी ग्रहों के अपने-अपने रंगों का उल्लेख है। वहां बताया गया है कि किसी भी व्यक्ति की जन्मकुंडली का विश्लेषण करके यह जाना जा सकता है कि कौन-सा ग्रह अत्यधिक निर्बल है। निर्बल ग्रह से संबंधित रंग का प्रयोग करके उसकी अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

सूर्य—ग्रह राज सूर्य का रंग लाल है। कुंडली में यदि सूर्य निर्बल हो तो लाल रंग का प्रयोग करके हम उसे बलशाली बना सकते हैं।

मंगल—मंगल का रंग केसरिया लाल है। इस रंग का प्रयोग करके मंगल की अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

चन्द्र—चंद्रमा का रंग सफेद है। सफेद रंग का प्रयोग करके अनुकूलता प्राप्त कर सकते हैं।

बुध—बुध का रंग हरा है। हरे रंग का प्रयोग करके अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

गुरु—बृहस्पति का रंग पीला है। पीले रंग का प्रयोग करके गुरु की अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

शुक्र—शुक्र का रंग आसमानी सफेद है। इसकी अनुकूलता के लिए सफेद रंग का प्रयोग किया जा सकता है।

शनि, राहु, केतु—इन तीन ग्रहों का रंग नीला है। नीले रंग का प्रयोग कर इनकी अनुकूलताएं प्राप्त की जा सकती हैं।

दैनिक जाप मंत्र[८]

	वार	मंत्र
१.	रविवार	पूरा नमस्कार महामंत्र
२.	सोमवार	अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः
३.	मंगलवार	अरिहंत सिद्ध
४.	बुधवार	अ सि आ उ सा नमः
५.	बृहस्पतिवार	अरिहंत
६.	शुक्रवार	सिद्ध
७.	शनिवार	णमो लोए सव्वसाहूणं

अन्य विघ्न निवाकर जप (तीर्थंकरों के नाम से)

उपद्रव निवारक मंत्र

१. मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं धर्मनाथाय नमः

- मंत्र संख्या

प्रतिदिन एक माला

- परिणाम

उपद्रव का नाश[१०]

२. मंत्र

ॐ पार्श्वनाथाय ह्रीं नमः

- मंत्र संख्या

प्रतिदिन एक माला (सवा लाख से सिद्ध)

- परिणाम

विघ्न बाधाओं का शमन[११]

३. समस्या

निरन्तर चिंता, मानसिक अशांति

- मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं भगवते पार्श्वनाथाय हर हर स्वाहा

- मंत्र संख्या

प्रतिदिन एक माला

- परिणाम

चिंता मुक्ति[१२]

४. मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अरिष्टनेमिनाथाय नमः

- मंत्र संख्या

प्रतिदिन एक माला

- परिणाम

दुःख का नाश होता है।[१३]

५. मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रेयांसनाथाय नमः

- मंत्र संख्या

प्रतिदिन एक माला

- परिणाम
  सारे प्राणी आकर्षित होते हैं।[१४] (मैत्री भाव बढ़ता है)

६. मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सुपार्श्वनाथाय नमः
- मंत्र संख्या
  प्रतिदिन एक माला
- परिणाम
  स्वप्न में प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है।[१५]

७. मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं ऋषभदेवाय नमः
- मंत्र संख्या
  प्रतिदिन एक माला
- परिणाम
  सब प्रकार का भय दूर होता है।[१६]

८. विजय प्रदायक मंत्र
- मंत्र
  ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं कुंथुनाथाय नमः अथवा ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अजितनाथाय नमः अथवा ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अरनाथाय नमः।
- मंत्र संख्या
  तीनों में जो भी माला फेरे, प्रतिदिन एक माला
- परिणाम
  शत्रु पर विजय प्राप्त[१७]

९. सर्वरोगहर यंत्र–

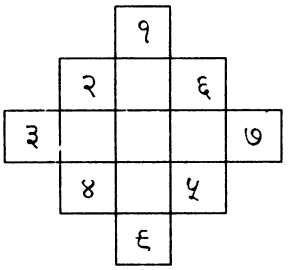

यह यंत्र पास में रहने से रोगों का निवारण संभव है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ग्रह, उपग्रह से जो रश्मियां निकलती हैं, उनका भी शारीरिक वर्गणाओं के अनुसार अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव होता है। विभिन्न रंगों के शीशों के द्वारा सूर्य की रश्मियों को एकत्रित कर शरीर पर डाला जाये तो स्वास्थ्य या मन पर उनकी विभिन्न प्रतिक्रियाएं होती हैं। संगठित दशा में हमें तत्काल उनका असर मालुम पड़ता है। असंगठित दशा और सूक्ष्म रूप में उनका जो असर हमारे ऊपर होता है उसे हम पकड़ नहीं सकते। इसी प्रकार ज्योतिर्विद्या में उल्का की ओर योग-विद्या में विविध रंगों की प्रतिक्रियाएं भी उनकी रश्मियों के प्रभाव से होती हैं।

यह सारा बाहरी प्रभाव है। अपनी आन्तरिक वृत्तियों का भी हम पर प्रभाव पड़ता है। ध्यान, जप अथवा मानसिक एकाग्रता से चंचलता की कमी होने से आत्मशक्ति का विकास होता है। मानसिक अनिष्ट चिंतन में वे प्रतिकूल वर्गणाएं अनुकूल प्रभाव डालती हैं।

जप की मुख्यतः तीन निष्पत्तियां हैं—आत्म विकास, आत्मशांति और आनंद की प्राप्ति। मुख्यतः मंत्र जप से होने वाले लाभ तथा चमत्कार के चार कारण सुझाये जा सकते हैं—

१. मंत्र द्रष्टा का आध्यात्मिक बल
२. शब्दों का अपना सामर्थ्य
३. ध्वनि प्रकंपन
४. शब्दाकृतियों के नायक अधिदेवता

नमस्कार महामंत्र का जप अथवा लोगस्स आदि आध्यात्मिक स्तवन समता, शांति, संबल, सफलता, सबलता और स्वास्थ्य देता है। सबका हित साधक होने के कारण इसके जप से सभी ग्रह अपना अनुकूल प्रभाव दिखाते हैं। इसी तथ्य की पुष्टि आचार्य श्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियों में खोजी जा सकती है[१८]—

अशुभानि प्रलयन्त्वखिलानी
तत् स्मर्णार्जित-सुकृत भरैः।

अर्थात् पंचपरमेष्ठी के स्मरण से अर्जित सुकृत समूह के बारे में अशुभ कर्म प्रलयता को प्राप्त हो जाते हैं।

संदर्भ

१. कर्म बंधन और मुक्ति की प्रक्रिया—पृ./८५

२. आपकी राशि आपका समाधान
३. मैं कुछ होना चाहता हूँ—पृ. ६६, णमो अरहंताणं—पृ./२०६
४. कर्म बंधन और मुक्ति की प्रक्रिया—पृ./८७
५. वही—पृ./८६
६. क्यों?—पृ. १२४
७. उपासना कक्ष—पृ./३०-३१
८. मंत्र एक समाधान—पृ./१४७, १४६, १५२, १५४, १५६, १५६, १६१, १६३, १६६
६. वही—पृ./१
१०. वही—पृ./१८७
११. वही—पृ./२००
१२. वही—पृ./१६४
१३. वही—पृ./१६३
१४. वही—पृ./२२६
१५. वही—पृ./२६७
१६. वही—पृ./२२६
१७. वही—पृ./२४७, २४८, २४६
१८. चतुर्विंशति गुणगेयगीतिः—श्लोक ३६

१३. चक्र और तीर्थंकर जप

चक्र शारीरिक, मानसिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, आचारात्मक, सूक्ष्म, प्रतीकात्मक, पौराणिक, धार्मिक, विकासात्मक, आध्यात्मिक अनेकों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। उन पर ध्यान केन्द्रित कर जप, ध्यान, अनुप्रेक्षा, रंगों के ध्यान आदि करने से हमारे मस्तिष्क, मन, इड़ा, एवं पिंगला के कार्यों में संतुलन आता है तथा कुण्डलिनी जागरण की पृष्ठभूमि तैयार होती है।

आध्यात्मिक एकाग्रता के लिए शरीरस्थ चक्रों को भी एकाग्रता के केन्द्र-बिंदु के रूप में उपयोग में लाया जाता है। शारीरिक स्तर पर चक्रों का संबंध शरीर में स्थित प्रमुख तंत्रिका जाल एवं अन्तःस्रावी ग्रंथियों से होता है। कई योगासनों का विशेष शक्तिशाली एवं लाभदायक प्रभाव इनमें से एक या अधिक ग्रंथियों अथवा जालकों पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, कण्ठ क्षेत्र में स्थित थाईराइड ग्रंथि पर सर्वांगासन एक शक्तिशाली दबाव उत्पन्न करता है। इस ग्रंथि का संबंध विशुद्धि-चक्र से होता है। इस आसन से थाईराइड ग्रंथि की अच्छी मालिश हो जाती है और इसकी कार्यशीलता में सुधार होता है। इसलिए आसन करते समय इस चक्र पर सजगता केन्द्रित की जाए, तो इसका लाभ बहुत अधिक बढ़ जायेगा।

चक्र की परिभाषा

चक्र का सामान्य अर्थ पहिया या वृत्त होता है योग के संदर्भ में इसका अर्थ भँवर या चक्रवात भी होता है। चक्र शरीर के विशेष भागों में स्थित प्राण शक्ति के केन्द्र हैं, जो सम्पूर्ण मानव शरीर में व्याप्त प्राण के प्रवाह को नियंत्रित करते हैं।

योग की भाषा में 'चक्र', प्रेक्षाध्यान में 'चैतन्य-केन्द्र', आयुर्वेदानुसार 'मर्म स्थान', शरीर शास्त्र की भाषा में 'ग्लैण्ड्स' और जापान में 'जुडो' पद्धति में 'क्यूसोस' कहलाने वाले इन सबके स्थल और आकार समान हैं। एक्यूपंक्चर और

एक्यूप्रेशर पद्धति ने 'सात सौ केन्द्र' खोज लिए हैं। चेतना के ये सारे केन्द्र हमारे शरीर में हैं। हठ-योग के आचार्यों ने 'सात सौ' चक्रों का, सश्रुत संहिता में 'एक सौ सत्तावन' मर्म स्थानों का, प्रेक्षा ध्यान में 'तेरह चैतन्य-केन्द्रों' का निर्देश दिया गया है। मानव शरीर में कुल 'सात सौ' बड़ी ग्रंथियां भी होती हैं, जिनसे शरीर के उपयोग के लिए हार्मोन्स बनते हैं।

प्रत्येक चक्र एक स्विच के समान है, जो मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्रों को जाग्रत करता है। अधिकतर व्यक्तियों के ये अतीन्द्रिय केन्द्र सुषुप्त और निष्क्रिय रहते हैं। योगाभ्यास करते समय इन चक्रों पर ध्यान करने से अथवा मंत्र जप, ध्यान आदि करने से शक्ति को इन चक्रों की ओर बहने की प्रेरणा मिलती है। इससे इन चक्रों को सक्रिय बनाने में सहायता मिलती है। ये चक्र क्रियाशील होकर मस्तिष्क के सुप्त क्षेत्रों और अतीन्द्रिय एवं मानसिक शरीरों में उनसे संबंधित क्षमताओं को जागृत करते हैं। इससे अभ्यासी चेतना के उन उच्च स्तरों की अनुभूति प्राप्त करता है, जो सामान्यतः उसकी पहुँच के परे होते हैं।

सात मुख्य चक्र हैं, जो मेरुदण्ड के मध्य से होकर प्रवाहित होने वाली सुषुम्ना नाड़ी में स्थित हैं। सुषुम्ना मूलाधार से निकलती है और सिर के शीर्ष पर समाप्त होती है। चक्रों का संबंध नाड़ियों के जाल से है। ये नाड़ियां तंत्रिकाओं के समान किन्तु उनसे अधिक सूक्ष्म होती हैं। चक्रों को प्रतीकात्मक रूप से कमल की पंखुड़ियों के रूप में दर्शाया जाता है। प्रत्येक चक्र की पंखुड़ियों की संख्या और रंग निर्धारित होता है। कमल आध्यात्मिक जीवन की उन तीन अवस्थाओं का प्रतीक है, जिनसे होकर साधक को गुजरना पड़ता है। ये तीन अवस्थाएं हैं—अज्ञान, जिज्ञासा और आत्म-साक्षात्कार। यह चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक के आध्यात्मिक विकास का परिचायक है।

बीज मंत्रों के साथ अंकित कमल-दल, चक्रों एवं नाड़ियों से सम्बन्धित अतीन्द्रिय शक्ति के विविध रूपों को दर्शाते हैं। प्रत्येक चक्र के भीतर एक यंत्र होता है जो उससे संबंधित तत्त्व एवं बीज मंत्र का ज्यामितीय प्रतीक होता है। यंत्र के भीतर उसका एक इष्ट देवता होता है, जो देवी सत्ता के एक विशिष्ट स्वरूप का प्रतीक है। साथ ही उस देवता का पशु रूप में एक वाहन भी होता है, जो उस चक्र विशेष से सम्बन्धित अन्य अतीन्द्रिय पक्षों को दर्शाता है।

चक्रों का वर्णन एवं तीर्थंकर जप

मूलाधार चक्र

यह सबसे नीचे का चक्र है इसलिए इसे मूलाधार या आधार चक्र कहते हैं।

यह पुरुषों में जननेन्द्रिय एवं गुदा के बीच और स्त्रियों में योनि-ग्रीवा के पास स्थित है। मूलाधार चक्र का संबंद्ध घ्राणेन्द्रिय से है। इसका प्रतीक चार पंखुड़ियों वाला गहरे लाल रंग का कमल है। इसके केन्द्र में पीला चतुर्भुज है, जो पृथ्वी तत्त्व का यंत्र है। इसका बीजमंत्र 'लं' है। चतुर्भुज के केन्द्र में शक्ति का प्रतीक रक्तवर्णी त्रिभुज है, जिसका शीर्ष नीचे की ओर है। इस चक्र में पृथ्वी तत्त्व है।

आन्तरिक स्थिरता एवं संतुलन की प्राप्ति हेतु मूलाधार चक्र पर ध्यान करने के लिए शक्ति एवं दृढ़ता के प्रतीक लाल अधोमुखी त्रिकोण या पीले वर्ण पर दृष्टि केन्द्रित करें।

जप

इस चक्र पर **सुविधिनाथजी** का ध्यान अथवा जप करने से सुखों की उपलब्धि होती है। णमो अरहंताणं का जप इस चक्र पर करने से आसक्ति, लोभ की भावना में कमी आती है।

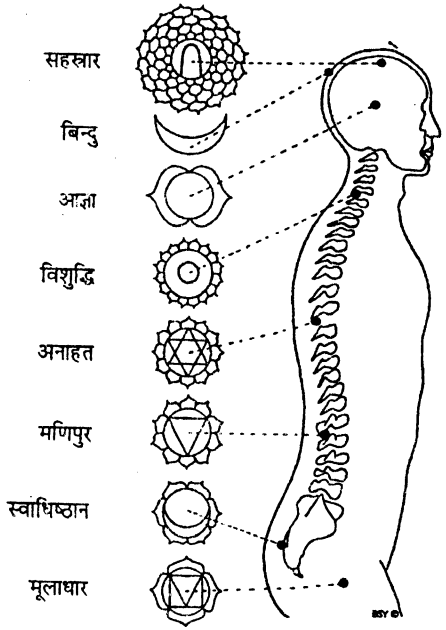

चक्रों की स्थिति

स्वाधिष्ठान चक्र

मेरुदण्ड में मूलाधार से लगभग दो अंगुल ऊपर और ठीक जननेन्द्रिय के पीछे स्वाधिष्ठान चक्र स्थित है। स्वाधिष्ठान का शाब्दिक अर्थ है, 'स्व+अधिष्ठान=अपना आवास'। इस चक्र का प्रतीक गहरे लाल रंग का छः पंखुड़ियों वाला कमल है। केन्द्र में श्वेत अर्द्धचन्द्र है, जो कि अपस् तत्त्व का यंत्र है और इसका बीज मंत्र है 'बं'। इस चक्र में पानी तत्त्व है।

इस केन्द्र को जागृत करने के लिए रात्रि के आकाश के नीचे काली लहरों से आच्छादित विस्तृत गहरे सागर का मानस दर्शन करें। सागर से उठने वाला ज्वार चेतना के प्रवाह का परिचायक है।

जप

इस स्थान पर **पार्श्वनाथजी** का जप किया जाता है और चित्र में दर्शाये गये चक्र में चन्द्राकार के ऊपर जो गोलाकार है उसमें 'णमो अरहंताणं' प्रदक्षिणा के क्रम में अर्थात् फिरता हुआ गोलाकार 'णमो अरहंताणं' इस सप्ताक्षरी महामंत्र का जप व साक्षात्कार करें। इस महामंत्र के एक इसी पद्य का ध्यान दो नेत्र, दो कान, दो नाक और एक मुँह—इन सात स्थानों पर केन्द्रित करने से स्वाधिष्ठान चक्र पर नियंत्रण होने के कारण सब प्रकार के दुःखों से मुक्ति होती है। सब प्रकार की विकृत भावनाओं का विलय होता है।

नेत्र आदि पर इस मंत्र का ध्यान करने की विधि

दोनों नेत्रों पर क्रमशः ध्यान केन्द्रित करें। दायें नेत्र पर 'ण' का ध्यान, बायें नेत्र पर 'मो' का ध्यान, दायें कान पर 'अ' का ध्यान, बायें कान पर 'र' का ध्यान, दायें नाक पर 'हं' का ध्यान, बायें नाक पर 'ता' का ध्यान तथा मुँह पर 'णं' का ध्यान करें।

यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और रहस्यात्मक प्रयोग है। स्वाधिष्ठान चक्र का संबंध जिह्वा एवं जननेन्द्रियों के माध्यम से आनंद एवं भोग की प्राप्ति करने से है। यह अतीत की संचित स्मृतियों और संस्कारों का भंडार है। यह मानव-जाति की सबसे प्राचीन और गहनतम मूल प्रवृत्तियों का केन्द्र है। इस केन्द्र के परिष्कार से मनुष्य **पाशविक** वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है। इस चक्र पर भगवान पार्श्व का ध्यान, णमो अरहंताणं का ध्यान अथवा ऊपर नेत्र आदि पर 'णमो अरहंताणं' का जो प्रयोग दिया है उसी विधि से ध्यान आदि प्रयोग करने से उत्सर्जक एवं प्रजनन अंगों के कार्यों से संबंधित विकार दूर होते हैं। इस केन्द्र पर ध्यान करने के

पश्चात् कुछ क्षणों के लिए आज्ञा चक्र (दर्शन-केन्द्र और ज्योति-केन्द्र) पर भी ध्यान करना चाहिए। ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिए भी यह उत्तम प्रयोग है।

मणिपुर चक्र

मेरुदण्ड में नाभि के ठीक पीछे मणिपुर-चक्र है। मणिपुर का अर्थ होता है, मणियों का नगर। यह नाम इसलिए दिया गया है कि अग्नि का केन्द्र होने के कारण यह मणि की भांति प्रकाशमान, प्राण-शक्ति और ऊर्जा का विकिरण करने वाला है। इस चक्र का वर्णन दस पंखुडियों वाले चमकीले पीले कमल के रूप में किया गया है। कमल के भीतर अग्नि तत्त्व का यंत्र, अग्नि के समान लाल त्रिभुज और बीजमंत्र 'रं' अंकित है। मणिपुर चक्र (सूर्य क्षेत्र) मुख्य रूप से पाचन की आवश्यक क्रिया और भोजन के चयापचय से संबंधित है। यह आमाशय की ग्रंथियों, अग्नाशय, पित्ताशय आदि के कार्यों को नियंत्रित करता है। जो पोषक तत्त्वों को पचाने एवं ग्रहण करने के लिए आवश्यक पाचक द्रव्यों, अम्लों, विविध रसों का उत्पादन एवं स्राव करते हैं। इस चक्र में अग्नि तत्त्व है।

वृक्क के ऊपर स्थित उपवृक्क (एड्रीनल ग्रंथि) का संबंध भी मणिपुर से है। आपातकालीन परिस्थियों में वे रक्त में एड्रीनल का स्राव करती है। इससे सभी शारीरिक क्रियाएं तीव्र हो जाती हैं और मन चौकस एवं सावधान हो जाता है। साथ ही हृदय गति बढ़ जाती है, श्वास तीव्र हो जाती है और अन्य कई परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। मनुष्य में सामान्य रूप से पलायन या संघर्ष करने की जो क्षमता होती है उससे कहीं अधिक क्रियाशीलता के लिए मानव शरीर तत्पर हो जाता है। जो व्यक्ति आलस्य, निराशा या अपचन और मधुमेह जैसे पाचन संस्थान के दोषों से पीड़ित है उन्हें मणिपुर चक्र पर इस भावना के साथ ध्यान करना चाहिए कि इस क्षेत्र से ऊर्जा का विकिरण हो रहा है।

इस चक्र पर एकाग्रता के लिए देदीप्यमान सूर्य या अग्नि के गोले का मानस दर्शन करें। अनुभव करें कि ऊर्जा प्रकाश के रूप में इस क्षेत्र से विकीर्ण होकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो रही है।

जप

इस चक्र पर **मुनिसुव्रत भगवान** का ध्यान अथवा जप करें। इसके मध्य में अर्हद्भ्यो नमः, उसके ऊपर की पंखुड़ी पर सिद्धेभ्योनमः उसके पश्चात क्रमशः आचार्येभ्यो नमः, उपाध्यायेभ्यो नमः, साधुभ्यो नमः, श्री दर्शनाभ्यो नमः, श्री ज्ञानाभ्यो नमः, श्री चारित्राय नमः, श्री तपाय नमः—ऐसा जप अथवा ध्यान करें। एक-एक पंखुड़ी पर कुछ समय तक भी ध्यान टिका सकते हैं।

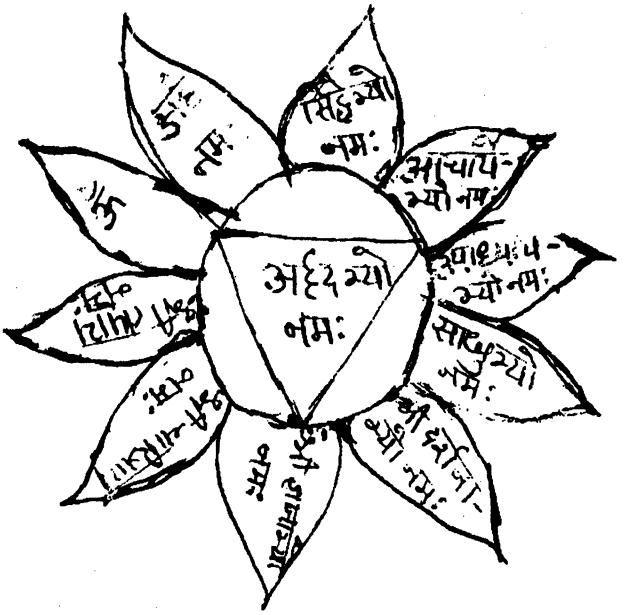

इस चक्र पर केवल णमो अरहंताणं का दीर्घकाल तक ध्यान करने से क्रोध क्षय होता है तथा कारूण्य भाव पुष्ट होता है।

अनाहत चक्र

उरोस्थि के पीछे मेरुदण्ड में हृदय के स्तर पर अनाहत चक्र स्थित है। अनाहत का अर्थ होता है आघात रहित। भौतिक जगत् के परे जो दिव्य ध्वनि है, वही समस्त ध्वनियों का स्रोत है, जिसे अनहद नाद कहते हैं। हृदय वह स्थान है जहां वह ध्वनि प्रकट होती है।

इस चक्र का प्रतीक १२ पंखुड़ियों वाला नीला कमल है। कमल के मध्य में षट्भुज है, जिसकी रचना दो मिले हुए त्रिभुजों से हुई है। यह वायु तत्त्व का यंत्र है। इसका बीज मंत्र 'यं' है। अनाहत चक्र अहैतुक प्रेम का केन्द्र है। इस स्तर पर वसुधैव कुटुम्बकम् एवं सहिष्णुता के भाव का उदय प्रारंभ हो जाता है। इस चक्र में वायु-तत्त्व है।

शारीरिक स्तर पर अनाहत का संबंध हृदय, फेफड़े, रक्त परिसंचरण तथा श्वसन प्रणालियों से है। पाण्डु रोग, धड़कन बढ़ना, उच्च रक्तचाप, क्षय रोग, दमा

और श्वसन संबंधी रोगों से पीड़ित व्यक्ति आसन एवं अन्य योगाभ्यास करते समय अनाहत पर ध्यान कर सकते हैं।

अनाहत चक्र पर ध्यान करने के लिए नीले कमल या दो गुंथे हुए त्रिभुजों से निर्मित नीले षट्भुज का मानस-दर्शन करना चाहिए, जिसके मध्य में एक छोटी-सी ज्योति प्रज्ज्वलित है। कल्पना करें कि वायु रहित स्थान पर यह स्थिर निष्कम्प ज्योति है। यह जीवात्मा का प्रतीक है, जो सभी प्राणियों के अंतःकरण में विद्यमान है और सांसारिक प्रपंचों से अप्रभावित रहता है।

जप

इस चक्र पर **नेमिनाथ प्रभु** का ध्यान करें अथवा जप करें। तथा षोड़ाक्षरी मंत्र—"ॐ अ सि आयरिय उवज्झाय साहूणं नमः" पद का जप करने से मन, वचन व काय योग में दृढ़ता आती है। वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। आनंद-केन्द्र (अनाहत-चक्र) पर यह जप अत्यन्त लाभकारी माना जाता है। इस चक्र पर णमो अरहंताणं का ध्यान करने से मान (अहं) का क्षय होता है।

विशुद्धि चक्र

गर्दन के पीछे भाग में कण्ठकूप के पीछे विशुद्धि चक्र स्थित है। जो शुद्धि करण का केन्द्र है। इसका प्रतीक सोलह पंखुड़ियों वाला कमल पुष्प है। इस कमल का रंग जामुनी है। कमल के केन्द्र में श्वेत वृत्त है, जो आकाश तत्त्व का यंत्र है। इसका बीज मंत्र 'हं' है। इसमें आकाश तत्त्व है। इस चक्र में सम्यक् विचार और विवेक का उदय होता है। विशुद्धि चक्र वाक् तंतु, कण्ठ प्रदेश, थाईराइड और पेराथाईराइड ग्रंथियों को नियंत्रित करता है। इस चक्र पर एकाग्रता का अभ्यास कर शरीर के विकारों और दोषों को ठीक किया जा सकता है। कण्ठ-केन्द्र वह स्थल है जहां अमृत का आस्वादन किया जाता है। यह अमृत एक मधुर रस है, जो बिंदु-चक्र में उत्पन्न होकर विशुद्धि में आता है, जहां उसे परिशोधित एवं परिष्कृत कर सम्पूर्ण शरीर में उपयोग हेतु प्रेषित किया जाता है।

इस केन्द्र पर एकाग्रता के लिए एक बड़ी सफेद अमृत की बूंद का मानस-दर्शन करें। अनुभव करें कि हिम-सी शीतल मधुर अमृत-बूंदें विशुद्धि में टपक रही हैं, जो मुझे आनंद से भर रही हैं।

जप

इस चक्र पर ध्यान केन्द्रित कर **"अर्हं नमः"** का जप करें। इस चक्र पर

ध्यान केन्द्रित पर चौबीस तीर्थंकरों का नाम स्मरण करने से भावों की विशुद्धि बढ़ती है। सब प्रकार की अनुकूलताएं प्राप्त होती हैं। णमो अरहंताणं का जप इस चक्र पर करने से माया की भावना का क्षय होता है।

आज्ञा चक्र

मध्य मस्तिष्क में, भ्रू मध्य के ठीक पीछे मेरुदण्ड के शीर्ष पर आज्ञा-चक्र स्थित है। इस केन्द्र को अन्य कई नामों से भी जाना जाता है, जैसे तृतीय नेत्र, ज्ञानचक्षु, त्रिवेणी, गुरु-चक्र और शिव नेत्र।

आज्ञा चक्र का प्रतीक रजत वर्णी दो दल वाला कमल है, जो सूर्य एवं चन्द्र या पिंगला (धनात्मक प्रवाह) एवं इड़ा (ऋणात्मक प्रवाह) का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनों प्राण प्रवाह, जिसमें द्वैत भाव की अनुभूति होती है, इस केन्द्र में सुषुम्ना में मिल जाते हैं। कमल के मध्य में पवित्र बीज मंत्र 'ॐ' है। इस चक्र का तत्त्व मानस है। इसी केन्द्र में प्रज्ञा और अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। आज्ञा चक्र के जागृत होते ही मन स्थिर एवं शक्तिशाली हो जाता है और प्राण के ऊपर पूर्ण नियंत्रण स्थापित होता है।

अतीन्द्रिय स्तर पर यह 'बिंदु' मानसिक एवं अतीन्द्रिय आयामों के बीच सेतु का निर्माण करता है। अतः दिव्य दृष्टि, दूर श्रवण एवं दूर संवेदन जैसी अतीन्द्रिय क्षमताओं को प्रदान करने का श्रेय इस चक्र को जाता है।

आज्ञा चक्र पर एकाग्रता साधने के लिए भ्रू मध्य का उपयोग किया जाता है। इस केन्द्र पर एक छोटी ज्योति या 'ॐ' के प्रतीक का मानस-दर्शन करें और विचारों को आन्तरिक गुरु पर विचरण करने दें।

जप

इस चक्र पर यानि भ्रू मध्य पर **शांतिनाथजी** का जाप अथवा ध्यान करने से समग्र सिद्धियां मिलती हैं तथा सदैव मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है।

सोमचक्र (बिंदु विसर्ग)

इसे ब्रह्म बिंदु चक्र भी कहते हैं। यह ललाट के पास है जो सोम कला अर्द्धचन्द्र की आकृति स्वरूप है इसमें 'अ सि आ उ सा नमः' मंत्र का चंद्र जैसा श्वेत रूप (निर्विकल्प दशा) में ध्यान करना।

बिंदु का शाब्दिक अर्थ बूंद और विसर्ग का अर्थ बूंद बूंद गिराना है। इस अतीन्द्रिय केन्द्र को सोम चक्र भी कहते हैं। सोम देवताओं का अमृत है और यह चन्द्रमा का पर्याय भी है। बिंदु-विसर्ग का प्रतीक काली रात्रि में एक लघु अर्द्ध-चन्द्र है।

बिंदु नाद का केन्द्र है। इस केन्द्र का उपयोग वहां उदित होने वाली अतीन्द्रिय ध्वनियों पर एकाग्रता का अभ्यास करने के लिए किया जाता है।

जप

अर्हं ध्वनि, महाप्राण ध्वनि, चंद्रमा का ध्यान, चंदेसु निम्मलयरा का जप प्रमुख रूप से इस केन्द्र को जागृत करने के लिए किया जाता है।

सहस्रार चक्र

सहस्रार सिर के शीर्ष पर स्थित है। वास्तव में यह चक्र ही नहीं, बल्कि उच्चतम चेतना का वास स्थान है। सहस्रार को हजार पंखुड़ियों वाले दीप्तिमान कमल के रूप में दर्शाया गया है। कमल के मध्य में शुद्ध चेतना का प्रतीक दीप्तिमान ज्योतिर्लिंग है। जब कुंडलिनी जागती है, तो वह विभिन्न चक्रों से उर्ध्वगमन करती हुई सहस्रार तक जाती है और परमस्रोत में विलिन हो जाती है, जो उसका उद्‌गम स्थल भी है। इस अवस्था में प्राप्त योगी परम ज्ञान एवं परम आनंद का अनुभव करते हुए जन्म-मृत्यु के परे चला जाता है।

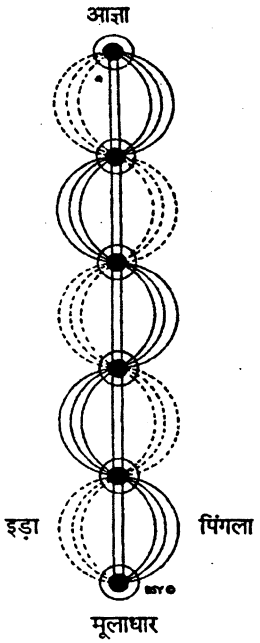

नाड़ी

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार शरीर में ७२,००० नाड़ियां हैं। नाड़ी शब्द का सामान्य अर्थ धारा या प्रवाह होता है। अतीन्द्रिय दृष्टि संपन्न व्यक्ति को ये प्रकाश धाराओं के रूप में दिखाई पड़ती है। आधुनिक काल में नाड़ी को 'तंत्रिका' के अर्थ में लिया जाता है, किंतु वास्तव में नाड़ियां सूक्ष्म तत्त्वों से निर्मित हैं। चक्रों की भाँति नाड़ियाँ भी भौतिक शरीर का अंश नहीं हैं, हालाँकि वे भौतिक शरीर में स्थित तन्त्रिकाओं के समान हैं। नाड़ियाँ वे सूक्ष्म नलिकायें हैं, जिनमें से प्राण-शक्ति का प्रवाह होता है। अतीन्द्रिय शरीर की बहुसंख्य नाड़ियों में से दस प्रमुख हैं और इनमें से तीन सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहते हैं। इन तीनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सुषुम्ना है। अतीन्द्रिय शरीर की सभी नाड़ियाँ (इड़ा एवं पिंगला भी) सुषुम्ना के अधीन हैं।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना

सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड के केन्द्र में स्थित एक आध्यात्मिक पथ है। यह मूलाधार चक्र से निकलती है और सिर के ऊपरी भाग में स्थित सहस्रार में समाप्त होती है। इड़ा नाड़ी मूलाधार की बायीं ओर से निकलकर सर्पाकार आकृति में मेरुदण्ड में स्थित प्रत्येक चक्र को क्रमशः दायीं और बायीं ओर से पार करती हुई अन्त में आज्ञा-चक्र के बायें भाग में समाप्त होती है। पिंगला नाड़ी मूलाधार की दायीं ओर से निकलकर प्रत्येक चक्र को इड़ा की विपरीत दिशा मे पार करती हुई आज्ञा-चक्र के दाहिने भाग में समाप्त होती है। इड़ा और पिंगला हमारे भीतर प्रवाहित दो विपरीत शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इड़ा निष्क्रिय, अन्तर्मुखी और स्त्री के गुणों वाली है; इसे चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है, जबकि पिंगला सक्रिय, बहिर्मुखी और पुरुष के गुणों वाली है; इसे सूर्य नाड़ी कहा जाता है।

निष्कर्ष

चक्र मनुष्य के ऊपरी शरीर में नहीं रहते, वे आत्मिक शरीर में निवास करते हैं जिन्हें बाह्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता है। इन्हें पहचानने के लिए मन की एक विभिन्न प्रक्रिया द्वारा अभ्यास किया जाता है। भिन्न प्रकार के चक्र, रंग, मंत्र आदि का निर्माण शारीरिक व आध्यात्मिक केन्द्रों से संबंध स्थापित करने के लिए किया गया है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का उस चक्र की अभिव्यक्ति के सभी पक्षों से सूक्ष्म संबंध स्थापित होता है। वस्तुतः मानव मस्तिष्क में संस्कार चक्र प्रतिकित होते हैं। अतः चक्रों की प्रतीकात्मक खोज के द्वारा हम

अपने संस्कारों की खोज कर उनका निर्मूलन करते हैं। द्वन्द, वासनाओं, स्मृतियों आदि के संस्कारों को हटाने के लिए चक्रों पर ध्यान, तीर्थंकरों का जप न केवल एक शक्तिशाली अभ्यास है, वरन् यह व्यक्ति के अन्दर सोई हुई प्रतिभा के विकास का भी एक सबल माध्यम बनता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चक्र शारीरिक, मानसिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, आचारात्मक, सूक्ष्म, प्रतीकात्मक, पौराणिक, धार्मिक, विकासात्मक, आध्यात्मिक अनेकों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, उन पर ध्यान केन्द्रित कर, जप, ध्यान, अनुप्रेक्षा, रंगों के ध्यान आदि करने से हमारे मस्तिष्क, मन, इड़ा एवं पिंगला के कार्यों में संतुलन आता है तथा कुण्डलिनी जागरण की पृष्ठभूमि भी तैयार होती है।

संदर्भ

चक्रों का विवेचन—आसन, प्राणायाम, मुद्रा बंध—पृ. ५४५/५५२ का सारांश, तीर्थंकर जप के प्रयोग लोगस्स—एक दिव्य साधना तथा चक्रों पर कषाय विजय एवं महामंत्र की विधियां—एसो पंचणमोक्कारो से संकलित व उधृत।

१४. लोगस्स कल्प

औषधिय उपचार, रसायन और भू गृह की शरण में रहकर आदमी अपनी जीर्ण-शीर्ण कोशिकाओं को नया बना लेता है उसी प्रकार मन भी घिस-घिस कर जब पुराना पड़ जाता है। तनावों से टूट-टूट कर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है उस बूढ़े मन को भी यौवन दिया जा सकता है कल्प के द्वारा। कल्प की पद्धति है आत्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव और आराधना।

काया-कल्प की पद्धति बहुत पुरानी है। पुरानी हो जाती है काया तब उसका कल्प किया जाता है। औषधिय उपचार रसायन और भू गृह की शरण में रहकर आदमी अपनी जीर्ण-शीर्ण कौशिकाओं को नया बना लेता है। कौशिकाओं में नया होने की शक्ति सहज है। प्रयोग द्वारा उसका नवीनीकरण ओर अधिक गतिशील हो जाता है।

मन भी घिस-घिस कर पुराना पड़ जाता है। तनावों से टूट-टूट कर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। उस बूढ़े मन को भी यौवन दिया जा सकता है कल्प द्वारा। कल्प की पद्धति है आत्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव और आराधना। कल्प की उपरोक्त व्याख्या करते हुए आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने लिखा है कि "जयाचार्य ने कल्प की पद्धति बतलाई है—'चौबीसी'—चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति के माध्यम से, उसको मैंने आज के संदर्भ में "मन का कायाकल्प" में प्रस्तुत किया है जिसमें निमित्त बना प्रेक्षाध्यान शिविर।

यदि हम प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो अनेकों कल्प उपलब्ध होते हैं, जैसे—भक्तामर-कल्प, उवसग्गहर-कल्प, नमस्कार महामंत्र-कल्प, लोगस्स-कल्प, श्री विद्या-कल्प, वर्धमान विद्या-कल्प, रोगापहारिणी-कल्प, मंत्र-कल्प, प्रतिष्ठा-कल्प, चक्रेश्वरी-कल्प, पद्मावती-कल्प, सूरिमंत्र-कल्प, वाग्वादिनी-कल्प आदि। ये सभी मंत्र एवं तंत्र प्रधान ग्रंथ हैं। प्रस्तुत ग्रंथ 'लोगस्स' से संबंधित हैं अतः लोगस्स-कल्प जो प्राचीन आचार्य द्वारा उधृत है, यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ।

लोगस्स कल्प

१. मंत्र

ऐं ॐ ह्रीं एं लोगस्स उज्जोगयरे धम्म तित्थयरे जिणे ।
अरहंते कित्तइस्सं चउविसंपि केवली-मम मनस्तुष्टि कुरु कुरु ॐ स्वाहा ॥

विधि

इस मंत्र को सूर्योदय के समय काउसग्ग की मुद्रा में मौन सहित १०८ बार जपें। मुँह पूर्व दिशा की ओर रहे। एकासन और ब्रह्मचर्य व्रत रखें। निरंतर चौदह दिन तक जप करने से इसकी साधना पूरी होती है। इस साधना काल में यथासंभव रात्रि संवर करें, सोते समय संवर कर सकते हैं अथवा भूमि या पट्टे के सिवाय अन्य गद्दे आदि पर न सोएं—ऐसा विधान मिलता है।

लाभ

आत्म-शक्ति का संचय होता है। मान, सम्मान, धन, संपत्ति की प्राप्ति के साथ-साथ सब प्रकार के संकट दूर होते हैं।

॥ इति प्रथमं मंडलं ॥

२. मंत्र

ॐ क्रां क्रीं ह्रां ह्रीं उसभमजियं च वंदे, संभवमभिनंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे स्वाहा ॥

विधि

इसे उत्तराभिमुख हो पद्मासन में १०८ बार जपने का विधान है। सोमवार से सात दिन तक मौन एवं एकासन रखें। ब्रह्मचर्य पालन करें। झूठ का प्रयोग न करें।

लाभ

गृह-कलह और राज-काज के झगड़ों की चिंताओं से मुक्ति मिलती है। व्यन्तर आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

॥ इति द्वितीय मंडलं ॥

३. मंत्र

ॐ एं ह्रीं श्रूं श्रीं सुविहिं च पुप्फदंतं सीयल सिजंस वासुपूज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि स्वाहा ॥

विधि

लाल रंग की माला से १०८ बार प्रतिदिन जपें। ब्रह्मचर्य का पालन करें एवं असत्य न बोलें। इस प्रकार २१ दिन जपने से इसकी सिद्धि होती है।

लाभ

शत्रु का भय दूर होता है। संग्राम में या मुकद्दमें में विजय होती है।

॥ इति तृतीय मंडलं ॥

४. **मंत्र**

ॐ ह्रीं श्रीं कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणि सुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च मम मनोवाञ्छित पूरय-पूरय ह्रीं स्वाहा ॥

विधि

इस मंत्र की साधना के लिए भी ११,००० जप करने पड़ते हैं। साधना करते समय ब्रह्मचर्य का पालन करें एवं असत्य न बोलें। यथा संभव पीले रंग की माला से पूर्वाभिमुख हो यह जप करना चाहिए।

लाभ

मानसिक चिंताओं से मुक्ति मिलती है। भूत-प्रेत की बाधा दूर होती है। लिखकर गले में बांधने से ज्वर पीड़ा भी दूर होती है।

॥ इति चतुर्थ मंडलं ॥

५. **मंत्र**

ॐ ह्रीं श्रीं एवं मए अभिथुआ विहूयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउविसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु स्वाहा ॥

विधि

५,५०० बार इस मंत्र का जप करने से इसकी सिद्धि होती है। साधना करते समय एकासन व ब्रह्मचर्य की साधना तो आवश्यक है ही, असत्य भाषा का भी प्रयोग न हो। पूर्व दिशा की ओर हाथ जोड़कर खड़े हों तथा मुख ऊपर आकाश की तरफ रहे।

लाभ

भविष्य के विषय में अपूर्व अनुभव प्राप्त होते हैं। सब प्रकार के सुख मिलते हैं। व्यक्ति सबको प्रिय लगता है।

॥ इति पंचमं मंडलं ॥

६. **मंत्र**

ॐ ह्रीं अंबराय कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरोग्ग-बोहि लाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु स्वाहा ॥

विधि

इस मंत्र की साधना उत्तरदिशाभिमुख हो १५,००० बार जपने से सिद्ध होती है।

लाभ

धर्म के कार्यों में रुचि का विकास होता है। देवता प्रसन्न होते हैं। जय-जयकार होती है, सब प्रकार के सुख और अन्त में समाधि मरण का गौरव प्राप्त होता है।

॥ इति षष्ठ मंडलं ॥

७. **मंत्र**

ॐ ह्रीं ऐं ओं जों जौं चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा। सागरवर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु मन मनोवांछित पूरय पूरय स्वाहा ॥

विधि

पूर्व दिशा की ओर अभिमुख हो १००० जप करें।

लाभ

मनः शैथिल्य दूर होता है। सब प्रकार की आशा पूर्ण होती है। यश और प्रतिष्ठा बढ़ती है। सब जगह पूज्यता प्राप्त होती है।

॥ इति संप्तम मंडलं ॥

लोगस्स कल्प–एक घटना प्रसंग

पेटलावद के बापूलालजी मोन्नत के मकान में बीस वर्षों से एक किरायेदार रह रहा था। बीस वर्षों के पश्चात जब उसे मकान खाली करने का कहा तब वह मकान खाली करने से इनकार हो गया। पेटलावद कोर्ट, S.D.O. पेटलावद कोर्ट, इंदौर हाई कोर्ट–तीनों जगह के केस में बापूलालजी जीत गये पर किरायेदार मकान खाली करने को तैयार नहीं हुआ। आगे से आगे कार्यवाही चलती रही। इस मध्य तीस वर्ष का समय बीत गया। बापूलालजी का भी स्वर्गवास हो गया।

एक दिन उनका पुत्र श्रेणिक पेटलावद के मंत्र-कोविद श्रावक बसंतीलाल कासवा के पास गया। सारी स्थिति की उन्हें अवगति दी। कासवाजी ने उन्हें लोगस्स के निम्नोक्त पद्य की प्रयोग विधि बताते हुए जप करने का निर्देश दिया।

मंत्र

सुविहिं च पुप्फदंतं सीयल सिजंस वासुपूज्जं च ।
विमल मणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि स्वाहा ॥

प्रयोग विधि

कोर्ट में जाने से पूर्व तीन बार मंत्रोच्चारण करना। उसके पश्चात जो स्वर चल रहा हो वही पैर पहले घर से बाहर रखना तीन बार 'स्वाहा' बोलते हुए आगे बढ़ना।

कोर्ट में न्यायाधीश के सामने अथवा दरवाजे के पास बैठे-बैठे जब तक पेशी चल रही हो तब तक मन ही मन जप करते रहना।

मंत्र प्रयोग के ठीक एक माह बाद कोर्ट का फैसला उनके पक्ष में हुआ जो इस प्रकार था—"मकान मालिक बापूलालजी की जो संतान है मांगीलाल, आनंदीलाल, श्रेणिक कुमार, इंदरमल—इनको इस मकान का कब्जा 90 दिन के अन्दर दिलवाकर अधीनस्थ न्यायालय इसकी रिपोर्ट हाईकोर्ट में भेजे।"

निर्णय होने के 75 दिन तक जब कोई कार्यवाही नहीं की गई तो कोर्ट ने श्रेणिकजी को बुलाया और कहा—"आपको मकान का कब्जा लेना है, निर्देश मिल गया तो आपने कार्यवाही क्यों नहीं की। क्या आप आगे कब्जा लेना चाहते हैं?"

श्रेणिकजी जब घर से रवाना हुए तो उस मंत्र का जप स्मरण करके गये थे और वहाँ पर भी मंत्र भीतर ही भीतर मौन स्वर में चल रहा था। उन्होंने कहा—"पूर्व में भी मैं दो-तीन बार केस जीत चुका हूं किंतु यहां के कर्मचारी मुझे कब्जा नहीं दिलाते, सामने वाले में मिल जाते हैं।"

न्यायाधीश ने कर्मचारियों को बुलाकर कहा—ये क्या कह रहे हैं सुनो, कर्मचारी कब्जा नहीं दिलाते हैं और सामने वाले में मिल जाते हैं रिश्वत ले लेते हैं इसलिए मैंने कार्यवाही नहीं की। आगे अपनी बात को जारी रखते हुए उन्होंने कहा—"तुम इनको कब्जा नहीं दिलाओगे तो मैं हाईकोर्ट में तुम्हारी रिपोर्ट लिख दूंगा जिससे तुम्हारी और मेरी—दोनों की नौकरी चली जायेगी। बोलो क्या करना है? इतना कह वह मौन हो गया।

सब कर्मचारी बोले हम इन्हें कब्जा दिलाने के लिए तैयार है। आप कार्यवाही करें। उसके बाद मंत्र जप करते हुए श्रेणिकजी ने कार्यवाही की और तीन दिन में कब्जा मिल गया। इस प्रकार कुल 85 दिनों में सारा कार्य व्यवस्थित हो गया। तीस वर्षों से चल रहा मुकदमा मंत्र के सहारे आसानी से सुलझ गया और विजय श्री ने उनका वरण किया।

संदर्भ

मंत्र विद्या—पृ./३८ से ४०

भीतर का रोग भीतर का इलाज, खण्ड-२ मनोचैतसिक चिकित्सा—पृ./१२४, ११४, १४४

मंत्र-एक समाधान—पृ./९२, १४५, १८६, २१३

१५. चौबीसी और आचार्य जय

जयाचार्य कृत चौबीसी का चतुर्विंशति या चौबीसियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसका प्रमुख कारण है कि उनके द्वारा कृत चौबीसी में सम्पूर्ण जैन वाङ्मय का सार निहित है। उसके एक-एक पद्य में उनकी आन्तरिक आस्था बोल रही है। उसका एक-एक शब्द मंत्रोपम है। उसमें ध्यान के मूल तत्त्व और अनुप्रेक्षा का समीचीनता के साथ प्रतिपादन हुआ है।

चौबीसी में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है। इसका मूल आधार 'उक्कित्तणं' (लोगस्स उज्जोयगरे...) लोगस्स का पाठ है, जिसमें चौबीस तीर्थंकरों का स्तव है। इसे चउवीसत्थव (चतुर्विंशति स्तव) भी कहा जाता है। तीर्थंकरों की स्तुति संयुक्त और वियुक्त—दोनों रूपों में उपलब्ध होती है। संयुक्त का एक रूप रहा है—चौबीस तीर्थंकरों का युगपत् गुणस्तवन। यह गुणस्तवन सर्व प्रथम आवश्यक सूत्र में 'उक्कित्तणं' सूत्र पाठ के नाम से प्राप्त होता है। इसे चतुर्विंशति स्तव के नाम से भी जाना जाता है। इसका दूसरा रूप है दो, तीन, चार, पांच आदि तीर्थंकरों की स्तुति।

वियुक्त रूप में की गई तीर्थंकर स्तुति की भी दो विधाएं रही हैं। एक सामान्य रूप से गुणोत्कीर्तन और दूसरा सैद्धान्तिक विषयों के निरूपण के साथ कीर्तन। इनमें से अनेक पर वृत्ति, चूर्णि, अवचूर्णि, विवरण, स्तबक, टिप्पण आदि भी लिखे गये हैं। वे स्वोपज्ञ तथा अन्यकृत दोनों रहे हैं।

जयाचार्य कृत चौबीसी का चतुर्विंशति या चौबीसियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसका प्रमुख कारण है कि उनके द्वारा कृत चौबीसी में सम्पूर्ण जैन वाङ्मय का सार निहित है। उसके एक-एक पद्य में उनकी आन्तरिक आस्था बोल रही है। उसका एक-एक शब्द मंत्रोपम है। उसमें ध्यान के मूल तत्त्व और अनुप्रेक्षा का समीचीनता के साथ प्रतिपादन हुआ है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में—"यह ध्यान योग की विशिष्ट रचना है।

ध्यान में रंगों का महत्त्व है। जयाचार्य इसका मूल्य जानते थे। उन्होंनें रंगों के ध्यान का महत्त्व बतलाया है। चौबीसी में उन्होंने विविध तीर्थंकरों के विविध रंगों की भी चर्चा की है।"[1]

जीवन के तीसवें बसंत में युवाचार्य अवस्था में उन्होंने इस चौबीसी की रचना की। इसका रचनाकाल वि.सं. १९०० का है। उन्होंने कुल आठ दिनों में चौबीस गीतों *की रचना की। प्रत्येक गीत मे सात-सात पद्य हैं। केवल एक चौदहवें गीत में आठ पद्य हैं। चौबीसी उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है जिसको सैंकड़ों वर्षों से लोग तन्मयता पूर्वक गाते आये हैं। जयाचार्य ने इस कृति में अर्हतों की यथार्थता का उत्कीर्तन किया है। मात्र उत्कीर्तन ही नहीं किया अर्हतों के साथ तादात्म्य भी साधा। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने कहा—"शारीरिक और मानसिक कष्ट के समय विशेष रूप से मृत्यु के समय 'चौबीसी' का स्मरण आध्यात्मिक संबल देने वाला प्रमाणित होता है। प्रतिदिन के स्वाध्याय में भी इसके स्मरण से आत्मलीनता की स्थिति प्राप्त हो सकती है। तीर्थंकरों की स्तुति में तन्मय होकर जयाचार्य स्वयं आगमतः भाव तीर्थंकर हो गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं"[2]। जयाचार्य के अनुसार "तीर्थंकर भगवान की स्तुति से अस्तित्व बोध, आत्मिक गुणों का विकास और वृत्तियों का परिष्कार होता है। अपूर्व समाधि की उपलब्धि होती है।"[3]

जयकृत चौबीसी का वैशिष्ट्य

जयकृत "चौबीसी" उनकी भक्ति रस की एक उत्कृष्ट अमर रचना है। यह एक प्राणवान स्तुति है। यह आत्म-समाधि और आत्मानुभव का एक सशक्त और पुष्ट आलम्बन ग्रंथ है। इसमें साधना के अनेक प्रयोग और पद्धतियां हैं। आगमिक गूढ़ तत्त्वों के रहस्यों को सरल शैली में प्रस्तुति दी गई है। भक्ति के साथ तत्त्वज्ञान को भी इसमें पूरा स्थान मिला है। भक्ति संभृत होने के कारण इसमें शांत, वैराग्य आदि रसों का आस्वादन चरण-चरण पर मिलता है। यत्र तत्र वीर रस भी प्रवाहित हुआ है। साधना का संदेश, श्रद्धा, समर्पण, संयम और सत्य की अभिव्यक्ति को इसमें महत्त्व के साथ दर्शाया गया है। यह कालजयी एवं क्षेत्रजयी कृति सम्पूर्ण साधक समाज के लिए पठनीय तथा नित्य स्मरणीय है। इस काव्य की एक-एक पंक्ति श्रद्धापूर्वक हृदय सागर की अतल गहराई से उठी हुई हिलोर है जिसका स्पर्श पाते ही कान पवित्र हो जाते हैं। वाणी से उच्चरित होने पर वाणी पवित्र हो जाती है। अन्तःकरण को स्पर्श करने पर विषय, वासना, अहंकार, लोभ का क्षय कर

* देखें परिशिष्ट-२

वैराग्य, निर्वेद, संवेग रस की अमिय धारा बहा देती है। इसका स्मरण करते समय इतिहास की उन अनंत-अनंत दिव्य भव्य आत्माओं के साथ जब हमारी आत्मा का भावना के सेतु द्वारा मधुर मिलन होता है तब जिस अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती है वह गूंगें के गुड़ की तरह मात्र अनुभव का ही विषय होती है। इसका स्वाध्याय, गायन और उच्चारण करते समय उत्कृष्ट भाव रसायन का स्पर्श होता है वह कुछ ऐसा अलौकिक है कि मन का कण-कण प्रफुलित हो जाता है। यह मेरा स्वयं का भी पन्द्रह वर्षों का अनुभव है। मैं पन्द्रह वर्षों से निरन्तर इस चौबीसी का स्वाध्याय कर रही हूँ। इस स्वाध्याय से आनंद, प्रसन्नता और संतोष—ऐसी विलक्षण रसानुभूतियां होने लगती हैं कि हृदय गद्‌गद् हो उठता है। आँखों में आनंदाश्रु बहने लगते हैं। एक अपूर्व रोमांच उत्पन्न होकर मन भक्ति की गंगा या विनय की सुरसरिता में डुबकियां लेने लगता है। कभी-कभी तन्मयता की ऐसी धारा जुड़ती है कि शरीर अपने आसन पर और मन आत्म शासन पर केन्द्रित हो जाता है।

जयाचार्य की सहज स्फुरित शब्दावली में अलंकार प्रयोग नहीं किंतु चमत्कार प्रयोग अवश्य ही है। एक अज्ञात प्रेरणा, शक्ति और बल मस्तिष्क में स्फुरित होने लगता है। विविध राग-रागिनियों से रचकर उसे सौंदर्य से अभिमंडित किया है। इनमें हृदय को छूने वाली रसात्मकता है। भक्ति के समस्त भाव इन गीतों में सहज रूप से अंकित हैं। साख्य, दास्य, माधुर्य आदि भावों की अभिव्यंजना पक्षी की सहज किलोल की तरह शिशु की सहज किलकारी के समान तथा पवन की मुक्त हिलोर के समान हर्ष विभोर कर देती है। शब्द शिल्प रमणीय है। इनमें स्तवनों की तरह भक्ति की सहजानुभूति तरंगित है।

महायोगी और विशिष्ट तत्त्वज्ञानी आचार्य

तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्री मज्जयाचार्य प्रख्यात प्रभावशाली जैनाचार्य हुए। ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय आदि में रमण करने वाले वे एक अध्यात्म योगी और विशिष्ट तत्त्वज्ञानी आचार्य थे। उनकी प्रज्ञा जागृत थी। उनका चिन्तन बड़ा व्यापक और व्यक्तित्व बहुत कर्मशील था। उनकी विद्वता कोरी शास्त्रीय नहीं अनुभूत-स्निग्ध थी। उनके जीवन की एक-एक घटना अपने आप में इतिहास है। जन्म के बाद जब उनकी जन्मकुडली एक ज्योतिष को दिखाई गई तो उसने उनके राजा बनने की घोषणा की। दीक्षित होने के बाद उनके दिल्ली चातुर्मास में भी एक ज्योतिषी की दृष्टि उनके चरण चिह्नों पर पड़ी और उसने कहा—आप निश्चय ही एक विशाल धर्म संघ के अत्यन्त सूझबूझ वाले पारदर्शी अधिशास्ता बनेंगे। जयाचार्य ने धर्म संघ के अधिशास्ता बनकर इन भविष्यवाणियों को साकार कर दिखलाया।

उनकी सफलता का रहस्य था ध्यान और स्वाध्याय। तप, जप और ध्यान का अनूठा त्रिवेणी संगम था उनका महान व्यक्तित्व। उनकी सिद्धहस्त योग-साधना को इस ध्यान के एक प्रयोग से ही समझा जा सकता है कि वे कितने सधे हुए और उत्कृष्ट कोटि के योगियों की श्रेणी में थे। कहा जाता है कि वे तीन-चार घंटे तक प्राणों को ब्रह्मरंध्र में रोके रहते और जब वे ध्यान से उपरत होते और प्राणों को नीचे लाते तब वायु इतने वेग से निकलती कि आस-पास में बैठे लोग भयभीत हो जाते। सचमुच वे एक महान योगी थे। रात्रि दो बजे से चार बजे तक नियमित ध्यान के विविध प्रयोगों से अपनी चेतना को भावित और परिष्कृत करने के वे सतत अभ्यासी थे। प्रतिदिन ४०,००० गाथाओं की स्वाध्याय करना उनका दैनिक क्रम था। उन्होंने सात वर्ष, नौ माह ओर इक्कीस दिनों में ८६ लाख ६८ हजार साढ़े चार सौ गाथाओं का स्वाध्याय कर एक अनूठा और प्रेरणादायी उदाहरण प्रस्तुत किया।

प्रतिभाशाली साहित्यस्रष्टा

जयाचार्य की साहित्य सर्जना बहुत विशाल है। उनकी लेखनी की क्षमता अद्भुत थी। ३०० पद्यों का एक दिन में सृजन कर लेना उनके लिए कोई कठिन काम नहीं था। तभी तो वे भगवती जैसे विशाल ग्रंथ को पांच वर्ष की अवधि में पूर्ण कर सके। राजस्थानी भाषा के वे अद्वितीय साहित्यकार थे। राजस्थान, राजस्थानी-भाषा और साहित्य के लिए यह बहुत ही गौरव की बात है। उनके समस्त रचित वाङ्मय का प्रमाण साढ़े तीन लाख पद्यों के परिमित अंकित किया गया है। इतने पद्यों का निर्माण कर धर्म संघ को उन्होंने एक अनुपम निधि प्रदान की। सारा संघ युगों-युगों तक उनका कृतज्ञ रहेगा। उन्होंने तुलनात्मक और शोधात्मक साहित्य भी लिखा है। शायद वे प्रथम विद्वान थे जो उस समय आधुनिक शोध पद्धति का प्रयोग अपनी साहित्य कला में कर सके। आचार्य भिक्षु द्वारा प्रणित आचार दर्शन को आगम साहित्य के आधार पर प्रमाणित करने का जो उपक्रम उन्होंने किया वह आधुनिक पद्धति के शोधकार्य का एक अच्छा नमुना है। १६ वर्ष की अल्पायु में प्रज्ञापना जैसे अभिन्न ग्रंथ को राजस्थानी भाषा में पद्यमय अनुदित कर आपने अद्भुत प्रतिभा कौशल दिखाया। सचमुच उनकी प्रतिभा चामत्कारिक थी। उनकी साहित्य प्रतिभा बचपन से ही प्रस्फुटित थी। ११ वर्ष की किशोरावस्था में संत गुणमाला नामक कृति की संरचना कर उन्होंने समूचे संघ को आश्चर्यान्वित और भाव-विभोर कर दिया। ८० हजार पद्य प्रमाण भगवती की जोड़ आपकी अद्वितीय कृति है। इसके अतिरिक्त निशीथ, आचारांग, उत्तराध्ययन

की पद्यमय टीकाएं लिखकर न केवल उन्होंने नई साहित्यिक विधा को जन्म दिया बल्कि उन्हें सार्वजनिन बनाने में भी सफल सिद्ध हुए। तात्विक, दार्शनिक एवं चारित्र प्रबंधों के विषयों पर भी उन्होंने स्वतंत्र बहुत कुछ लिखा है।

तेरांपथ में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा का विधिवत अभ्यास करने वाले तथा सूत्र (आगम) की जोड़ करने वाले वे प्रथम आचार्य थे। प्रतिभाशाली साहित्यस्रष्टा के रूप में संघ ने उनको नवाजा। सामान्यतया आध्यात्मिक लोग अपनी उपदेशात्मक रचनाओं में परस्मैपद प्रयोग को चुनते हैं परन्तु जयाचार्य ने उस लीक से हटकर आत्मने पद का प्रयोग किया, उदारहण स्वरूप–

स्तुति जश और प्रशंस
हिवडै सुण नहि हरखियै
अवगुण द्वेष न अंश सुण
तू 'जय' निज सीखड़ी ॥

"हे जय! तू अपनी ही सीख सुनना। न तो स्तुति, यश, प्रशंसा को सुनकर हृदय में हर्ष लाना और न अवगुण सुनकर द्वेशांस को अपने मन में स्थान देना।" ये पंक्तियां इस सत्य को सत्यापित करती हैं कि जयाचार्य कवि, आत्मसाधक, संघ व्यवस्थापक और एक साधक साहित्यकार थे। उनका जीवन एक प्रयोगशाला था। वे साधना के नाना अन्वेषण और प्रयोग करते थे। उनके द्वारा रचित चौबीसी को ध्यान योग की एक ऐसी रचना कह सकते हैं जो जन-मानस को आनंद विभोर करती हुई शिव रमणी से वरण का मार्ग प्रशस्त करती है। चौबीसी में भी उनके आत्मने पद के प्रयोग को आत्मसमर्पण और आत्माभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है।

प्रभो! मैं तुम्हारा शरणागत हूँ, तुम मेरे अन्तःकरण में बसे हुए हो। मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा, पर मैं आगम वाक्य को प्रमाण मानकर तुम्हारा ध्यान कर रहा हूँ।[४] अन्तर्यामिन्! मैं अवधारणा पूर्वक तुम्हारी शरण में आया हूँ, तुम शरणागत को शांति देने वाले हो, यह समझकर मैं दिन-रात तुम्हारा जप कर रहा हूँ।[५] तुम कल्पवृक्ष व चिंतामणि रत्न के समान हो, तुम्हारा सुमिरन करने से मनोवाञ्छित काम सिद्ध हो जाता है।[६] तुम्हारे गुणों का संगान करने से मन उल्लसित होता है। सुख सम्पत्ति उपलब्ध होती है। तुम्हारा सुमिरन करने से विघ्न दूर होते हैं और परम कल्याण की प्राप्ति होती है।

भक्त कवि

"भक्ति में शक्ति" किसी अनुभवी की यह वाणी अत्यन्त अनुभवमयी है। सचमुच भक्ति निर्बल का बल है, असहायों का सहाय, अत्राणों का त्राण और

अप्राणों का प्राण है। किसी संत से पूछा गया भक्ति की पूर्णता क्या? प्रत्युत्तर में उसने कहा—अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को मिटा देना भक्ति की पूर्णता है। हनुमान के लिए राम ही सर्वस्व थे। जयाचार्य के लिए वीतराग सर्वस्व हैं। भक्ति के लिए तीर्थंकर सर्वश्रेष्ठ पात्र होते हैं। 'विघ्न मिटे स्मरण किया'—जयाचार्य का यह आस्था सूत्र आज लाखों लोगों का आस्था सूत्र बन चुका है। गुणीजनों का गुणगान आत्मविशुद्धि का एक महत्त्वपूर्ण हेतु है। जयाचार्य ने एक प्रसंग में लिखा है—

गुणवन्त ना गुण गावता, तीर्थंकर गोत बंधाय ।
शंका हुवै तो देखल्यो, ज्ञाता सूत्र रै मांय ॥

शायद जयाचार्य इस तथ्य से भलिभांति परिचित थे—

भक्ति ऐसी कीजिए जामें लखै न कोय ।
जैसे मेंहदी पात में बैठी रंग लकोय ॥

ऐसी भक्ति से भाव शुद्धि, हृदय शुद्धि, क्रिया शुद्धि, कुल शुद्धि और वाक् शुद्धि होती है। इसलिए भक्ति को शोकमोहभयापहा आत्मरजस्तमोपहा कहा गया है। भक्ति वह शक्ति है जिसको प्राप्त कर लेने के बाद समर्थहीन व्यक्ति भी प्रभूत सामर्थ्य का स्वामी हो जाता है।

उनके व्यक्तित्व एवं रचनाओं को पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे अन्यान्य विशेषताओं के साथ-साथ एक भक्त कवि भी थे। बाहरी और आन्तरिक विक्षेप उपस्थित होने पर उन्होंने अर्हत् की स्तुति, तपस्वी की स्तुति, अपने आराध्य पूर्व आचार्यों की स्तुति का सहारा लिया। उनके स्तुति मान से विक्षेप खत्म हो गये, स्थिति निरापद बन गई। विघ्नहरण, मुणिन्द मोरा, भिक्षु म्हारे प्रगट्या आदि रचनाएं इन संकट के विशेष क्षणों में निर्मित हुईं। ऐसी प्राण घातक घटनाएं भी एक मात्र स्तुति गान से टल गईं।

ज्योतिर्धर जयाचार्य इस क्षेत्र में अनेक प्रयोगों के प्रवक्ता थे, अनेक उपसर्गों के भोक्ता थे। उनके निवारणार्थ उन्होंने जिन धार्मिक अनुष्ठानों का प्रयोग किया था उनमें एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग था स्तुति गान।*

बाह्य विक्षेपों का समाधान कर पाने के बाद उनका ध्यान आन्तरिक विक्षेपों की ओर गया। इन आन्तरिक विक्षेपों से विकृतियां प्रभावित होती हैं, मन चंचल बनता है, इंद्रिया असीमित हो उठती हैं, अध्यात्म में अवरोध खड़ा हो जाता है। इन विक्षेपों के उपशम हेतु उन्होंने अर्हत् स्तुति का आलंबन लिया। चौबीस तीर्थंकरों की अलग-अलग तर्जों में रचना करके अध्यात्म साधना में लीन साधकों

* विशेष जानकारी के लिए देखें—"जय-जय जय महाराज" (पुस्तक)

के लिए उपशम भाव का बहुत बड़ा प्रयोग प्रस्तुत कर दिया। अपने साधना काल में आने वाले आन्तरिक विक्षेपों के समाधान का एक अनुभूत मार्ग प्रस्तुत कर दिया। जिसके गायन मात्र से मन के उद्वेग, तन के आवेग, इंद्रियों के संवेग शांत हो जाते हैं। बशर्ते गायन में तन्मयता आए। संघ को जयाचार्य की यह एक महान आध्यात्मिक कृति चौबीसी उपलब्ध है जो भक्ति रस की एक उत्कृष्ट अमर-रचना है। महाकवि ने भाव-विभाव से मुक्त होकर स्वभाव में स्थित हो भक्ति की अद्भुत भावधारा में बहकर ऐसे विशाल रूप में इस कृति का प्रणयन किया है कि इसका एक-एक शब्द मंत्राक्षर की तरह प्रभावशाली, चामत्कारिक और अमृत बिंदु की भांति आनंददायी बन गया है। आनंद की उर्मियों में चेतना नहा लेती है, भावनाएं उज्ज्वल हो जाती हैं, रसमय, भक्तिमय एवं निर्वेदमय हो जाती हैं। जयाचार्य की साधुता में करुणा, भक्ति, वैराग्य की त्रिवेणी मिलकर अनूठी पवित्रता, सत्वर प्रगति और रसमयता पैदा करती है।

रामचरित मानस के रचियता संत तुलसीदास की रचनाएं विश्व में अद्वितीय मानी जाती हैं इसका कारण अपने आराध्य और साध्य के साथ जुड़ी उनकी तल्लीनता है। अन्वेषणात्मक और तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो श्रीराम के प्रति अखण्ड असीम भक्ति-पूर्ण विद्वता, अनुपम कवित्व शक्ति और उनसे उत्पन्न अबाध तल्लीनता के विरल योग के कारण ही गोस्वामीजी का रामचरित मानस विश्य साहित्य की उत्कृष्ट निधि बन गई।[८]

जयाचार्य श्री की रचनाओं में भी भक्तिकाव्य का उत्कृष्ट नमूना देखा जा सकता हे। उनके भक्ति काव्यों की शृंखला का अमर हस्ताक्षर--चौबीसी में वैराग्य रस, शांतरस और भक्ति रस—ये तीनों प्रकार के रस अपनी पराकाष्ठा के साथ छलक रहे हैं। सचमुच वे एक उच्च कोटि के भक्त कवि थे। भक्ति रस से ओत-प्रोत उनकी अनेक रचनाएं जब लोकगीतों के रूप में जन-जन के मुँह पर थिरकती हैं तो व्यक्ति की अध्यात्म चेतना झंकृत हो उठती है। एक अध्यात्म कृति होते हुए भी चौबीसी में उसका साहित्यिक रूप भी कम निखरा हुआ नहीं है। मन की निर्मलता व निर्विकारता की उसमें पुनः-पुनः प्रेरणा दी गई है। उपसर्ग शमन के भी कितने प्रयोग चौबीसी में छिपे हैं। गाथा-गाथा में ऐसे बीसों प्रयोग सिद्ध मंत्र पद हैं चौबीसी में, जो विकट से विकट स्थिति में ऐहिक और पारलौकिक समाधि के हेतु बनते हैं। चौबीसी एक ऐसी कृति है जिसके संगान से अन्तर्दृष्टि जागती है वीतराग भाव आता है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने मंत्र—एक समाधान में चौबीसी के कतिपय मंत्राक्षरों की प्रस्तुति दी है उनमें से कुछ विशिष्ट मंत्रों का विवरण निम्न प्रकार है—

जयाचार्य कृत चौबीसी के मंत्र

१. मंत्र

तूं प्रभु कल्पतरु जिसो, तूं चिंतामणि जोय ।
स्मरण करता आपरो, मन वांछित होय ॥

- मंत्र संख्या
  प्रतिदिन एक माला
- लाभ
  मन इच्छित प्राप्ति[९]

२. समस्या-भौतिक उलझन

- मंत्र

हो प्रभु! लीन पणै तुम ध्यावियां, पामै इन्द्रादिक नी ऋद्धि हो ।
बलि विविध भोग सुख सम्पदा, लहै आमोसही आदि लब्धि हो ॥

- मंत्र संख्या
  प्रतिदिन एक माला
- लाभ
  ऐहिक और पारलौकिक सम्पदा की प्राप्ति।[१०]

३. समस्या
क्लेश

- मंत्र

अहो प्रभु! अजित जिनेश्वर आपरो, ध्याऊं ध्यान हमेश हो ।
अहो प्रभु! अशरण शरण तू ही सही, मेटण सकल कलेश हो ॥

- मंत्र संख्या
  प्रतिदिन एक माला
- लाभ
  क्लेश का नाश होता है (पारिवारिक क्लेश)[११]

४. समस्या
बार-बार बाधाओं से प्रताड़ित होना।

- मंत्र

गुण गाता मन गह-गहै, सुख संपत्ति जाण ।
विघन मिटै समरण कियां, पामै परम कल्याण ॥

- मंत्र संख्या
  प्रतिदिन एक माला
- परिणाम।
  विघ्न-बाधाएं दूर होती है। मानसिक प्रसन्नता बढ़ती है।[१२]

चौबीसी : दो संस्मरण[१३]

चौबीसी के कुछ पद्यों में विचित्र रहस्य छुपा है। उन रहस्यों का उद्‌घाटन करते हुए मुनिश्री चम्पालालजी (मीठिया) ने 'श्रमण सागर'—मुनिश्री सागरमलजी को दो घटना प्रसंग सुनाए जो वीतराग वंदना में लिपिबद्ध हैं, और निम्न प्रकार से हैं—

१. क्लेश निवारक गुरु मंत्र

भंडारी बादरमल-सा राजमान्य व्यक्ति थे। जोधपुर महाराज तखतसिंहजी के युग में तो उनके पत्थर तैरते थे। एक प्रसिद्ध कहावत थी उस जमाने की "बारै-बारै बादरियों, मांही नाचै नाजरियो"।

युवराज जसवंतसिंहजी ने एक रेबारी को भेज भंडारी-सा से सांड मागी। भंडारीजी इन्कार हो गये। शिकायत गई। कुंवर-सा ने रूकी लिख भेजी "भंडारीजी! सांड भिजवा देना"।

बादरमल-सा ने मनाही कर दी और प्रत्युत्तर में कहा—जाओ, महाराज कुमार से अर्ज करना कि महरबानी कर रसाले से ऊँट मंगवा लेंगे तो अच्छा होगा। युवराज जसवंतसिंह जी ताव खा गये। निजी आदमी को भेजकर कहलवाया—भंडारीजी! सांड आपके बाप की है या मेरे बाप की?

भंडारीजी ने मुजरों के साथ अर्ज दुहराई—सरकार! सांड आपकी है या आपके बाप की है। (बड़े सरकार की) वह आपके लिए हाजिर है, पर जरा बड़े हुजूर का लिखा रूक्का साथ भिजवायें, वरना सांड नहीं मिलेगी। बस, युवराज कुमार खफा हो गये। चापलूसों ने उन्हें उकसाया। उन्होंने गांठ बांध ली। मौके की तलाश की। भंडारीजी सहज भाव से अपने आप में मस्त थे।

महाराज जसवंतसिंहजी (१९३० विक्रमी) सत्ता में आए। साथी संगलियों की पांचों अंगुलियां घी में थी। किसी बात को लेकर पुराना मुद्दा उखड़ा। बात याद आई। रातों-रात भंडारीजी की गिरफ्तारी के आदेश निकले। सुबह पहले-पहले हवेली घेर ली गई। कहते हैं डीडवाना वाले सिंघीजी ने युक्ति भिड़ाई। भंडारीजी सुरक्षित घेरे के बीच से निकले। भंडारी परिवार के पांच बच्चे नजरबंद हुए। पोकरण की हवेली में महिनों तक उन्हें रखा गया। वह एक ऐसा समय था जब भंडारीजी विकट समस्या में थे। अध्यात्म प्रवृत्त व्यक्ति को धर्म शरण के अतिरिक्त चारा ही क्या है? भंडारीजी जैसे संघनिष्ठ, गुरुभक्त और शासन सेवी की इस स्थिति पर युवाचार्य मघवागणी का हृदय पिघला। उन्होंने भंडारीजी को चौबीसी का एक पद्य रटने का सुझाव दिया। भंडारी बादरमलजी ने अध्यवसाय पूर्वक जाप प्रारंभ किया।

ज्यों-ज्यों जाप बढ़ा, आकाश का रंग बदला। विपत्ति के बादल बिखरे। ससम्मान भंडारीजी को दरबार-ए-जोधपुर में हाजिर होने का आमंत्रण मिला। मघवागणी जैसे देव-पुरुष का वचन खाली जाता भी तो कैसे?

बात यों हुई महाराज जसवंतसिंहजी सवारी लेकर जा रहे थे। एक हवेली के गोखे में पहने-ओढ़े पांचों भंडारी पुत्र सवारी देखने खड़े थे। महाराज की नजर पड़ी अनायास मुँह से निकला—ये कुंवर कौन से ठिकाने के हैं। पोकरण ठाकर साहब के हाथ एक तजबीज लगी। वे खवासी की नियुक्ति में दरबार के पीछे बैठे चंवर ढोल रहे थे। उन्होंने कहा—बड़ो हुकम! ये कुंवर हैं हुजूर के परम उपकारी भंडारी बादरमलसा के। याद है सरकार जब बड़े दरबार नाराज हो गये थे तब आप किले से उतर पधारे थे। भंडारी-सा ने आपको हवेली में छिपाकर रखा। दरबार से फिर मेल कराया। एक ही सांस में पोकरण ठाकर-सा सब कुछ कह गये।

महाराज जसवंतसिंहजी को वह दिन याद आया। बापू ने किले से उतरने को कह दिया। मैं गुस्से में घर छोड़ निकल पड़ा। सब साथी किन्नी काट गये। जागीरदारियों की हवेलियों पर फिरता फिरा। किसी ने आश्रय नहीं दिया। हजार बहाने बनाये। रुलता-रुलता नौ कोटि मारवाड़ का भावी मुकुट मैं, नेनीजान के बंगले रातानाड़ा पहुँचा सोचते-सोचते दरबार जसवंतसिंहजी के पसीना छूट गया। आँखों के आगे अंधेरी आ गई। वह भी एक दिन था।

भंडारीजी ने इज्जत रखी। मुझे अपनी हवेली लाये। आश्वासन दिया। मेहनत की। भाग-दौड़ कर ज्यों त्यों बापू को मनाया। मुझे दूसरी रात किले तक पहुँचाया। बाप-बेटे का रंज मिटाकर मेल-मिलाप कराया। वाह! वाह! भंडारीजी वाह! जी की जोखिम उठाकर सांप के मुँह में हाथ डाला। उस दिन भंडारीजी ना होते तो मैं कहाँ होता। आज यह दिन उन्हीं का दिया हुआ है। सोचते-सोचते दरबार जसवंतसिंहजी का कलेजा भर आया। धत्। तेरे जैसा भी कोई निकृष्ट होगा जसवंतसिंह! भूल गया...।

भंडारी कुंवरों को मुक्त कर तुरंत जाटावास पहुँचाया। भंडारी-सा को बाइज्जत दरबार में हाजिर होने का आमंत्रण दिया। भंडारीजी पहुँचे। दरबार में उन्हें कुर्सी दी गई। महाराज जसवंतसिंहजी गद्-गद् होकर बोले—नौ कोटि मारवाड़ का मुझे यह आसन दिलवाने वाले भंडारीजी! आज के बाद आप का उपराठा होऊं तो माताजी की आणं।"

आभार से भारी भंडारीजी अभी भी हाथ जोड़े खड़े-खड़े मन ही मन रटे जा रहे थे—

अजित जिनेश्वर आपरो ध्याऊं ध्यान हमेश हो ।
अशरण शरण तू ही सही, मेटण सकल कलेश हो ॥२/१

युवाचार्य मघवा द्वारा दिया गया यह गुरुमंत्र भंडारीजी जैसे न जाने कितने ही लोगों का त्राण बना होगा।

२. चौबीसी का एक मंत्र गर्भित पद्य

सरदारशहर के कस्तूरमलजी बरड़िया अपनी चाल के अकेले आदमी थे। यों तो वे छोगजी चतुर्भुजजी के अनुयायी—'प्रभु पंथी' थे पर श्रीचन्दजी गधैया से उनका घरेलू संबंध था। मुझे नहीं मालूम बरड़िया—गधैया परिवारों के बीच कोई दूर-नजदीक का रिश्ता है कि नहीं, पर रिश्ते से भी अधिक परस्परता थी इन दोनों सरदारों की। मान्यता की दृष्टि से दोनों ३६ का अंक। इधर कट्टर 'प्रभुपंथी' तो इधर कट्टर 'तेरापंथी'।

एक दिन बरड़िया कस्तूरचंदजी ने श्रीचंदजी से कहा—श्रीचंद! भाई, परिवार बढ़ गया है, कोई काम धंधा हो तो ध्यान में रखना।

समय आया गधैयाजी ने योजना बनाई। कलकत्ता नया काम करना तय रहा। उन्होंने बरड़ियाजी से कहा—काका-सा! नया धंधा करने का मन है। आप कहते थे न उस दिन, अगर मन हो तो वृद्धिचन्द को कलकत्ता भेज दो।

वृद्धिचंदजी बरड़िया कलकत्ता गये। गधैयाजी ने गणेशदास उदयचंद के नाम से नया काम प्रारंभ किया। बरड़ियाजी उसमें एक भागीदार रहे। संयोग ही कहना चाहिए वि. १९५१-५२-५३ तीन साल लगातार फर्म घाटे में चला। लोगों ने गधैयाजी से कहा—सेठ! किसको साथ किया है? इन बरड़ियों का पगफेरा ही अच्छा नहीं है। पर गधैया श्रीचंदजी जैसा दिलेर भी मिलने का नहीं। उनके एक रू. में एक पैसा भर का भी फरक नहीं आया। जब किसी अंतरंग आदमी ने यही बात दुहराई तो गधैयाजी बोले—श्रीचंद ने हाथ पकड़कर मझधार में छोड़ना नहीं सीखा, निभाना सीखा है। एक रोटी मुझे मिलेगी तो आधी बरड़ियों को भी मिलेगी।

यों तीन साल लगातार घाटे पर घाटा कस्तूरचंदजी को घायल कर गया। देनदारी की चिंता में खाना-पीना छूट गया। भीतर ही भीतर घुटते घुटते वे बीमार हो गये। खाट पकड़ ली। गुरासां बनेचंदजी को बुलाया। दिनमान दिखाया। मथेरण गणेशजी ने बातचीत की। कुछ बताओ। किसी तरह चिंता मुक्त होकर समाधि मरण मर सकूं। मथेरण गणेशजी पक्के रंगे हुए तेरापंथी थे। श्रद्धा उनकी नस-नस में रमी हुई थी। यह बात बरड़ियाजी भी जानते थे। गणेशजी ने कहा—'बरड़ियाजी! एक 'खिचड़ी' की माला फेरो, आपकी चिंता मिटेगी। दिन फिरेंगे, मेरा अनुभव है आप करो। तेरे-मेरे में मत उलझना।

बरड़ियाजी ने माला मंत्र मांगा। मथेरणजी ने समझाया—माला के एक मणके पर—

"चन्द्र चन्द्रोति चन्द्रेति, चन्द्र चन्द्रेति शीतले ।
चन्द्र चन्द्र-प्रभा चन्द्र, चन्द्र चन्द्रा वरानने ॥"

गाथा बोलें और दूसरे मणके पर जयाचार्य की चौबीसी पर यह गाथा पढ़ें—

"लीन पणै तुम ध्याावियां
पामै इन्द्रादिक नी ऋद्धि हो।
बसि विविध भोग सुख सम्पदा
लहै अमोषही आदि लब्धि हो ॥"[१४]

एक पर यह, एक पर वह। माला प्रारंभ हुई। डोकरा रोज एक माला मनोयोगपूर्वक फेरता। साल भर बीत गया।

वि.सं. १९५६ जेठ शुक्ला ग्यारस की बात है। श्रीचंदजी गधैया साता पूछने आये। बरड़ियाजी ने कहा—"आव भाई श्रीचंद! कियां आयो।"

गधैयाजी ने जेब में से कागज निकाला और कहा—कलकत्ते का कागज है काका-सा—

सुनते ही कस्तूरचंदजी का दिल बैठ गया। उन्होंने कलेजे को थाम कर कहा—"भाई! छोरा पर थांरी देणदारी रो कलंक है श्रीचंद!" श्रीचंदजी बोले—काका-सा। अबै देणो कोनी रह्यो। बरड़ियाजी को कानों पर विश्वास नहीं हुआ। वे कहने लगे—तुम मेरे से मजाक करते हो।

गधैयाजी ने कागज पढ़कर सुनाया। पिछले वर्षों का घाटा पूरा कर इस साल अच्छी आमदनी रही। कस्तूरचंदजी का चेहरा खिल गया। उनके मुँह से निकला—"हैं अबै मर ज्यावां तो धोखो कोनी।" तत्काल आवाज दी, सारे परिवार को बुलाया और कहा "चंद्र प्रभु रो शरणों, सब दुःख हरणो" देखो! गधैया आपां रा सेठ हैं आपा हिस्सेदार हां, आ बात भूल ज्याईज्यो। जकै दिन थे आ समझ ल्यो ला म्हे बराबर का साझीदार हां, मान लिज्यो बीं दिन पुन पूरा ही गया। जाओ! धरम रो शरणो राखज्यो! सुखी रहीज्यो।"

ज्यों ही सब लोग गये, श्रीचंदजी गधैया अभी गली की नुक्कड़ भी पार नहीं कर पाये थे कि पीछे से आवाज आई—सेठा। वे वापस लौटे। देखा, कस्तूरचंदजी बरड़िया धीरे-धीरे गुनगुना रहे थे :

"लीनपणै तुम ध्याावियाँ, पामै इन्द्रादिक नी रीद्धि हो ।
बलि विविध भोग सुख सम्पदा, लहै आमोसही आदि लब्धि हो ॥"

गाथा बोलते-बोलते आँख खोल दी। सभी देखते ही रह गये।

उक्त दोनों घटना प्रसंगों का उल्लेख करते हुए मुनिश्री सागरमलजी (श्रमण सागर) ने लिखा है गणेशजी मथेरण के लड़के धनराजजी ने हमें सुनाया—महाराज! जयाचार्य श्री की चौबीसी का एक-एक पद्य मंत्र गर्भित है।

निष्कर्ष

अपने भीतर विराजमान प्रभु का दर्शन अर्हतों ने ध्यान की उच्चतम भूमिका पर पहुँचकर ही किया था। वीतराग आत्मा का ध्यान करते-करते व्यक्ति स्वयं भी वीतरागमय बन जाता है। अतएव जयाचार्य ने चौबीसी के माध्यम से आत्मशोधन की संकलिष्ट प्रक्रिया को सहज सरल रूप से हृदयग्राही प्रस्तुति दी है। कृतिकार ने प्रत्येक तीर्थंकर के एक विशिष्ट गुण को आधार बनाकर चौबीस लघु स्तवनों की ऐसी अनूठी रचना का निर्माण किया है जो ज्ञान योग, भक्ति योग, ध्यान योग, भेद विज्ञान, जप, तप, शील, संयम साधना आदि के गूढ़ रहस्यों को एक सहज तरतमता के साथ आराधक के चित्त और मन में एकाकार कर देती है।

वस्तुतः चौबीसी का स्वाध्याय आत्म जिज्ञासु को एक दृष्टि देता है, चिन्तन के नये आयाम देता है, जीने का अवबोध देता है और स्व से सर्वज्ञ तक की पहचान तथा मंजिल प्राप्ति का बोध देता है।

जयाचार्य ने दो चौबीसियों की रचना की एक बड़ी चौबीसी और एक छोटी चौबीसी। बड़ी चौबीसी में उन्होंने तीर्थंकरों के विभिन्न गुणों, अतिशयों एवं जीवन प्रसंगों का वर्णनात्मक विस्तार किया है। छोटी चौबीसी जो चौबीसी के नाम से लोकप्रिय है और अत्यन्त प्रभावी भी है। इस चौबीसी की गहराई में अवगाहन करने पर ऐसा अनुभव होता है कि जयाचार्य एक पहुँचे हुए सिद्ध योगी थे। उनके व्यक्तित्व को पढ़ने से एक स्वप्नाभास से यह अवगति मिलती है कि वे एक निर्मल आत्मा थे। निकट समय में ही मोक्ष लक्ष्मी का वरण करेंगे, इस मध्य चक्रवर्ती व तीर्थंकर भी बनेंगे। ऐसे निर्मलचेता महामना की महाप्रज्ञा को अन्तहीन नमन नमन नमन। सचमुच उनके जीवन के कण-कण में श्रद्धा, भक्ति तथा गुरु चरणों में पूर्ण समर्पण का भाव भरा हुआ है, वह अपने आप में अद्‌भुत है। उनकी जीवन झांकी को देखने से, पढ़ने से हमारा मन भी श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है।

संदर्भ

१. वीतराग वंदना—पृ./७७ डॉ. मूलचंद सेठिया के लेख से उधृत।
२. वही—पृ./६४
३. वही—पृ./२४४

४. चौबीसी–२/६
५. वही–५/६
६. वही–६/४
७. वही–६/६
८. वीतराग वंदना–पृ./२४२
९. मंत्र एक समाधान–पृ./११२ भीतर का रोग भीतर का इलाज, खण्ड २ मनोचैतसिक चिकित्सा, पृ./१२१
१०. मंत्र : एक समाधान–पृ./४३, भीतर का रोग भीतर का इलाज, खण्ड २, मनोचैतसिक चिकित्सा–पृ./१२४
११. मंत्र : एक समाधान–पृ./२१२, भीतर का रोग भीतर का इलाज, खण्ड २, मनोचैतसिक चिकित्सा–पृ./१४५
१२. वीतराग वंदना–पृ./२२०-२२४
१३. चौबीसी–८/४

परिशिष्ट-१

१. श्री वज्रपंजर स्तोत्र

नमस्कार महामंत्र हमारे शरीर एवं आत्मा के लिए एक सक्षम और अजेय आत्म रक्षा कवच है। नित्य प्रातःकाल मंत्र पाठ कर आत्म रक्षा की भावना करने से रोग, दुर्घटना, प्रहार, आकस्मिक आघात से तो रक्षा होती ही है। साथ ही साथ किसी भी प्रकार का भय और उपद्रव नहीं होता। प्राचीन आचार्यों द्वारा विरचित वज्रपंजर स्तोत्र एवं उसकी विधि निम्न प्रकार है–

परमेष्ठि नमस्कारं, सारं नवपदात्मकम् ।
आत्मरक्षाकरं वज्रपंजराभं स्मराम्यहम् ॥१॥

ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितम् ।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपटं वरम् ॥२॥

ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी ।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढ़म् ॥३॥

ॐ नमो लोए सव्व साहूणं, मोचके पादयोः शुभे ।
ऐसो पंच णमोक्कारो, शिला वज्रमयीतले ॥४॥

सव्वपावपणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगारखातिका ॥५॥

स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलं ।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देह रक्षणे ॥६॥

महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव-नाशिनी ।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः ॥७॥

यश्चैवं कुरुतेरक्षां, परमेष्ठि-पदैः सदा ।
तस्य न स्यात् भयं, व्याधिराधिश्चापि कदाचन ॥८॥

अर्थ

नवपद स्वरूप और जगत् का सारभूत यह परमेष्ठी नमस्कार आत्म रक्षा के लिए वज्रपंजर के समान है। उसका मैं स्मरण करता हूँ ॥१॥

ॐ णमो अरहंताणं। यह मंत्र मुकुट के रूप में मस्तक पर रहा हुआ है। ॐ नमो सव्वसिद्धाणं। यह मंत्र मुँह पर श्रेष्ठ वस्त्र के रूप में रहा हुआ है ॥२॥

ॐ नमो आयरियाणं। यह मंत्र अतिशायी अंग रक्षक है। ॐ नमो उवज्झायाणं। यह मंत्र दोनों हाथ में रहे हुए मजबूत शस्त्र की तरह है ॥३॥

ॐ नमो लोए सव्व साहूणं। यह मंत्र पैर के मंगलकारी पावपेश है। एसोपंचणमुक्कारो। यह मंत्र पैर के नीचे की वज्रशिला है ॥४॥

सव्वपावपणासणो। यह मंत्र चारों दिशाओं में वज्रमय किले की तरह है। मंगलाणं च सव्वेसिं। यह मंत्र खेर की लकड़ी के अंगारे की खाई है। (अर्थात् बोलते समय यह सोचना कि किले के बाहर चारों तरफ खेर की लकड़ी के अंगारे में खाई भरी हुई है।) ॥५॥

पढमं हवइ मंगलं। यह किले के ऊपर वज्रमय ढक्कन है। इस पद के अन्त में स्वाहा मंत्र भी समझ लेना चाहिए ॥६॥

परमेष्ठी पदों में प्रकट हुई महाप्रभावशाली यह रक्षा सब उपद्रवों का नाश करने वाली है, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥७॥

परमेष्ठी पदों के द्वारा इस प्रकार जो निरन्तर आत्मरक्षा करते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार का भय, शारीरिक व्याधि और मानसिक पीड़ा कभी नहीं सताती। यह मंत्र सर्व उपद्रवों का नाश करने वाला है ॥८॥

विधि

सैनिक जिस प्रकार कवच धारण कर अपने शरीर की सुरक्षा करता है, वैसे ही साधक अनिष्ट शक्तियों से बचने के लिए "वज्रपंजर-स्तोत्र" का प्रयोग करता है। सर्वप्रथम दायें हाथ के अंगूठे सहित चारों अंगुलियों पर क्रमशः "ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः"—इन पांच बीजाक्षरों को तीन बार बोलकर स्थापित करता है। दायें अंगूठे पर 'ह्रां', तर्जनी पर 'ह्री' मध्यमा पर 'ह्रूं', अनामिका पर 'ह्रौं', कनिष्ठा पर 'ह्रः' मंत्र बीजों को स्थापित करता है। फिर हाथ का उपयोग अंग न्यास के लिए करता है।

तत्पश्चात ॐ नमो अरहंताणं–प्रथम पद की पहली पंक्ति को बोलता हुआ दायें हाथ को सिर पर स्थिर करता है। ॐ णमो सिद्धाणं–दूसरी पंक्ति को बोलता हुआ हाथ से पूरे मुँह का स्पर्श करता है। ॐ णमो आयरियाणं–तीसरी पंक्ति बोलता हुआ हाथ को सम्पूर्ण वक्षस्थल तथा उदर मार्ग पर घुमाता है। ॐ नमो उवज्झायाणं–चौथी पंक्ति बोलता हुआ दोनों हाथों को भुजाओं के समकक्ष उठाता हुआ शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होने की मानसिक मजबुत कल्पना करता है। ॐ नमो लोए सव्व साहूणं'–पांचवीं पंक्ति बोलता हुआ आसन स्थित दोनों पैरों की सुरक्षा की कल्पना करता है।

एसो पंच...बोलता हुआ आसन के नीचे भूमितल पर सुदृढ़ शिला की कल्पना करता है।

सव्व पाव...बोलता हुआ आसन के नीचे भूमितल पर सुदृढ़ शीला का किला है दोनों हाथ से चारों तरफ कल्पना करते हुए अंगुली घुमाना।

मंगलाणं च...बोलता हुआ किले के चारों ओर खाई की कल्पना करना।

पढमं हवइ...बोलता हुआ किले के ऊपरी भाग पर ढक्कन की परिकल्पना कर दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा उस कल्पित कोट के अन्दर अपनी जबरदस्त सुरक्षा कर लेता है। (इसको बोलते हुए हाथ को मस्तक पर रखकर विचार करना कि वज्रमय किले के ऊपर आत्म-रक्षा के लिए वज्रमय ढक्कन है।

इस तरह के एक निश्चित अभ्यास से व्यक्ति नितान्त अभय व शक्ति संपन्न बन जाता है।

(–सुमरो नित नवकार, पृ. ७८-८० से उद्धृत)

२. किस महिने में कौन-से तीर्थंकर का कौन-सा कल्याणक

चैत्र

च्यवन कल्याणक	चंद्रप्रभ (कृ. ५) पार्श्व (कृ. ४)
जन्म कल्याणक	ऋषभ (कृ. ८) महावीर (शु. १३)
दीक्षा कल्याणक	ऋषभ (कृ. ८)
केवलज्ञान कल्याणक	सुमति (शु. ११) पद्मप्रभ (शु. १५) कुंथु (शु. ३) पार्श्व (कृ. ४)
निर्वाण कल्याणक	अजित (शु. ५) संभव (शु. ५) सुमति (शु. ९) अनंत (शु. ५)

वैशाख

च्यवन कल्याणक	अजित (शु. १३) अभिनन्दन (शु. ४) शीतल (कृ. ६) विमल (शु. १२) धर्म (शु. ७)

जन्म कल्याणक	सुमति (शु. ८) अनंत (कृ. १३) कुंथु (कृ. १४)
दीक्षा कल्याणक	सुमति (शु. ९) अनंत (कृ. १४) कुंथु (कृ. ५)
केवलज्ञान कल्याणक	अनंत (कृ. १४) महावीर (शु. १०)
निर्वाण कल्याणक	अभिनंदन (शु. ८) शीतल (कृ. २) कुंथु (कृ. १) नमि (कृ. १०)

ज्येष्ठ

च्यवन कल्याणक	श्रेयांस (कृ. ६) वासुपूज्य (शु. ९)
जन्म कल्याणक	सुपार्श्व (शु. १२) शांति (कृ. १३) मुनि सुव्रत (कृ. ८)
दीक्षा कल्याणक	सुपार्श्व (शु. १३) शांति (कृ. १४)
केवलज्ञान कल्याणक	–
निर्वाण कल्याणक	धर्म (शु. ५) शांति (कृ. १३) मुनि सुव्रत (कृ. ९)

आषाढ़

च्यवन कल्याणक	ऋषभ (कृ. ४) महावीर (शु. ६)
जन्म कल्याणक	–
दीक्षा कल्याणक	नमि (कृ. ९)
केवलज्ञान कल्याणक	–
निर्वाण कल्याणक	वासुपूज्य (शु. १४) विमल (कृ. ७) अरिष्टनेमि (शु. ८)

सावन

च्यवन कल्याणक	सुमति (शु. २) अनंत (कृ. ९) कुंथु (कृ. ९) मुनि सुव्रत (शु. १५)
जन्म कल्याणक	नमि (कृ. ८) अरिष्टनेमि (शु. ५)
दीक्षा कल्याणक	अरिष्टनेमि (शु. ६)
केवलज्ञान कल्याणक	–
निर्वाण कल्याणक	श्रेयांस (कृ. ३) पार्श्व (शु. ८)

भाद्रपद

च्यवन कल्याणक	सुपार्श्व (कृ. ८) शांति (कृ. ६)
जन्म कल्याणक	–
दीक्षा कल्याणक	–

केवलज्ञान कल्याणक	–
निर्वाण कल्याणक	चंद्रप्रभ (कृ. ७) सुविधि (कृ. ६)

आसोज

च्यवन कल्याणक	नमि (शु. १५)
जन्म कल्याणक	–
दीक्षा कल्याणक	–
केवलज्ञान कल्याणक	अरिष्टनेमि (कृ. १५)
निर्वाण कल्याणक	–

कार्तिक

च्यवन कल्याणक	अरिष्टनेमि (कृ. १२)
जन्म कल्याणक	पद्मप्रभु (कृ. १२)
दीक्षा कल्याणक	पद्मप्रभु (कृ. १३)
केवलज्ञान कल्याणक	संभव (कृ. ५) सुविधि (शु. ३) अर (शु. १२)
निर्वाण कल्याणक	महावीर (कृ. १५)

मिगसर

च्यवन कल्याणक	–
जन्म कल्याणक	संभव (शु. १४) सुविधि (कृ. ५) अर (शु. १०) मल्लि (शु. ११)
दीक्षा कल्याणक	संभव (शु. १५) सुविधि (कृ. ६) अर (शु. ११) मल्लि (शु. ११) महावीर (कृ. १०)
केवलज्ञान कल्याणक	मल्लि (शु. ११) नमि (शु. ११)
निर्वाण कल्याणक	पद्मप्रभु (कृ. ११) अर (शु. १०)

पौष

च्यवन कल्याणक	–
जन्म कल्याणक	चंद्रप्रभ (कृ. ११) पार्श्व (कृ. १०)
दीक्षा कल्याणक	अजित (शु. ११) अभिनंदन (शु. १४) चंद्रप्रभ (कृ. १३) शीतल (कृ. १४) विमल (शु. ६) धर्म (शु. १५) पार्श्व (कृ. ११)
केवलज्ञान कल्याणक	शांति (शु. ६)
निर्वाण कल्याणक	–

माघ

च्यवन कल्याणक	पद्मप्रभ (कृ. ६)
जन्म कल्याणक	अजित (शु. ८) अभिनंदन (शु. २) शीतल (कृ. १२)
दीक्षा कल्याणक	विमल (शु. ३) धर्म (शु. १३)
केवलज्ञान कल्याणक	श्रेयांस (कृ. १५) वासुपूज्य (शु. २)
निर्वाण कल्याणक	ऋषभ (कृ. १३)

फाल्गुन

च्यवन कल्याणक	संभव (शु. ८) सुविधि (कृ. ९) अर (शु. २) मल्लि (शु. ४)
जन्म कल्याणक	श्रेयांस (कृ. १२) वासुपूज्य (कृ. १४)
दीक्षा कल्याणक	श्रेयांस (कृ. १३) वासुपूज्य (कृ. १५) मुनिसुव्रत (शु. १२)
केवलज्ञान कल्याणक	ऋषभ (कृ. ११) सुपार्श्व (कृ. ६) चंद्रप्रभ (कृ. ७) मुनि सुव्रत (कृ. १२)
निर्वाण कल्याणक	सुपार्श्व (कृ. ७) मल्लि (शु. १२)

(–तीर्थंकर चरित्र–पृ./२४६-२४७)

परिशिष्ट-२

उद्धृत, उल्लिखित एवं अवलोकित ग्रंथों की तालिका

१.	भगवती भाष्य	–	वाचना प्रमुख गणाधिपति तुलसी संपादक : भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ
२.	ठाणं	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी संपादक : विवेचक मुनि नथमल
३.	समवायांग	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक : विवेचक मुनि नथमल
४.	श्री भिक्षु आगम विषय कोष (भाग १)	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी प्रधान सम्पादक–आचार्य महाप्रज्ञ निर्देशन–मुनि दुलहराज, डॉ. सत्रंजन बनर्जी। संग्रह/अनुवाद/संपादक– साध्वी विमलप्रज्ञा, साध्वी सिद्धप्रज्ञा
५.	आचारांग	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक–विवेचक मुनि नथमल
६.	दसवैकालिक	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक : विवेचक मुनि नथमल
७.	उत्तराध्ययन	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक : विवेचक आचार्य महाप्रज्ञ
८.	अनुयोगद्वार	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक : विवेचक आचार्य महाप्रज्ञ

८.	आराधना	–	प्रवाचक युगप्रधान आचार्य तुलसी प्रधान सम्पादक–युवाचार्य महाप्रज्ञ, सम्पादन/अनुवाद–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा
१०.	भगवान महावीर	–	आचार्य तुलसी
११.	अर्हत् वंदना	–	आचार्य तुलसी
१२.	ज्योति जले मुक्ति मिले	–	आचार्य तुलसी
१३.	अपना दर्पण अपना बिम्ब	–	आचार्य महाप्रज्ञ
१४.	अपने घर में	–	युवाचार्य महाप्रज्ञ
१५.	मन का कायाकल्प	–	युवाचार्य महाप्रज्ञ
१६.	सानुवाद व्यवहार भाष्य–	–	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी प्रधान सम्पादक आचार्य महाप्रज्ञ संपादक अनुवादक मुनि दुलहराज
१७.	व्यवहार भाष्य सानुवाद	–	श्री संघदान गणि
१८.	सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक में	–	मुनि नथमल
१९.	जैन धर्म के साधना सूत्र	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२०.	अप्पाणं सरणं गच्छामि	–	आचार्य महाप्रज्ञ (संस्करण तीसरा)
२१.	विदेह की साधिका बालूजी	–	
२२.	भक्तामर अन्तस्तल में	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२३.	मंत्र–एक समाधान	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२४.	भीतर की ओर	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२५.	साधना और सिद्धि	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२६.	शक्ति की साधना	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२७.	तुम स्वस्थ रह सकते हो	–	आचार्य महाप्रज्ञ
२८.	महाप्रज्ञ ने कहा (भाग २१ वां)	–	संपादक मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुत विभा, साध्वी विमल प्रज्ञा
२९.	सुप्रभातम्	–	आचार्य महाप्रज्ञ
३०.	एसो पंच णमोक्कारो	–	आचार्य महाप्रज्ञ
३१.	गाथा परम विजय की	–	आचार्य महाप्रज्ञ
३२.	महात्मा महाप्रज्ञ	–	युवाचार्य महाश्रमण
३३.	संवाद भगवान से	–	युवाचार्य महाश्रमण

३४.	महावीर क्या थे	–	मुनि नथमल
३५.	विशेषावश्यक भाष्य	–	जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण
३६.	आवश्यक निर्युक्ति (खण्ड १)	–	सम्पादिका डा. समणी कुसुम प्रज्ञा
३७.	साधना के श्लाका पुरुष गुरुदेवश्री तुलसी	–	डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा
३८.	श्री आवश्यक सूत्रम्	–	जैनाचार्य जैन धर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज सा विरचिताऽऽचारमणि मंजूषाऽऽख्यान व्याख्या समलंकृत हिंदी गुर्जर भाषा सहितं
३९.	भीतर का रोग भीतर का इलाज	–	साध्वी शुभ्रयशाजी
४०.	श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का समीक्षात्मक अध्ययन	–	डॉ. हरिशंकर पांडेय
४१.	साधना पथ	–	एम.ए. संस्कृत एवं प्राकृत। लब्ध स्वर्णपदक, जे.आर.एफ. (नेट) पी-एच.डी. सहायक आचार्य प्राकृत भाषा एवं साहित्य
४२.	वीतराग वंदना	–	सम्पादक डॉ. मुमुक्षु शांता जैन
४३.	जिनवाणी प्रतिक्रमण विशेषांक		
४४.	क्यों?	–	अमरजीत यादव
४५.	चौबीस तीर्थंकर	–	डॉ. गोकुलचन्द्र जैन
४६.	तीर्थंकर चरित्र	–	मुनि सुमेरमल, लाड़नू
४७.	आर्हती दृष्टि	–	समणी मंगल प्रज्ञा
४८.	मन और उसका निग्रह	–	स्वामी बुधानंद
४९.	चक्रों का विवेचन– आसन, प्राणायाम, मूलबंध	–	स्वामी सत्यानंद
५०.	कर्म बंधन और मुक्ति की प्रक्रिया	–	चंदनराज मेहता
५१.	नाथू से महाप्रज्ञ–एक मनीषी की जीवन यात्रा	–	चंदनराज मेहता
५२.	अष्ट पाहुड़		

५३. स्वागत करें उजालों का – साध्वी कनकश्री
५४. श्रीमद् भगवत गीता – श्रीमद् ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
५५. विनय आराधना
६६. समता वाणी
६७. जैन साधना पद्धति में तपोयोग – मुनि श्रीचंद
६८. ज्ञान मीमांसा (नंदी सूत्र के संदर्भ में) – डॉ. साध्वी श्रुतयशा
६९. मंत्र विद्या – करणीदान सेठिया
६०. महामंत्र नवकार – उपाध्याय केवल मुनि
६१. मिले मन भीतर भगवान – कलापूर्ण सूरि
६२. शक्ति एवं शांति का स्रोत नमोक्कार महामंत्र – राष्ट्रसंत श्री गणेश मुनि शास्त्री
६३. आगम युग का जैन दर्शन – पण्डित दलसुख मालवणिया
६४. तुलसी-प्रज्ञा – वर्ष ३४ अंक १३४ जनवरी, मार्च २००७ हिंदी संपादक–डा. मुमुक्षु शांता जैन अंग्रेजी संपादक–डा. जगतराम भट्टाचार्य
६५. जैन भारती, फरवरी १९९५ – मानदक सम्पादक–शुभू पटवा
६६. लोगस्स सूत्र–एक दिव्य साधना– डा. साध्वी दिव्या
६७. पर्युषण साधना – साध्वी राजीमती
६८. भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर भाग-२ – सम्पादक–आचार्यश्री तुलसी संग्रहकर्त्ता–मुनिश्री चौथमलजी प्रबंध सम्पादक–श्रीचंद रामपुरिया
६९. जैन कथाकोष – मुनि छत्रमल
७०. साखी ग्रंथ – महाराज राघवदास कृत टीका
७१. प्रेक्षाध्यान–प्रयोग धर्मा महाप्रज्ञ विशेषांक

"ॐ अर्हम्"

❑❑❑

नाम	:	**साध्वी पुण्ययशा**
जन्म	:	२२ सितम्बर १९६३ बीदासर (राजस्थान)
दीक्षा	:	१५ फरवरी, १९८४ बीदासर (राजस्थान) आचार्यश्री तुलसी के कर कमलों द्वारा
पिता	:	श्री जीवनमलजी डागा
माता	:	श्रीमती रतनीदेवी डागा
अध्ययन	:	हिंदी, संस्कृत, प्राकृत राजस्थानी, अंग्रेजी आदि भाषा का ज्ञान
यात्रा	:	गुजरात, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र राजस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि
प्रकाशित कृति	:	१. तप की अमिट लौ : साध्वी भत्तूजी (सन २००४ में) २. संथारे का आशीर्वाद : साध्वीश्री सुखदेवांजी (चूरू) (सन २००५ में), ३.-४. नमस्कार महामंत्र : एक अनुशीलन भाग-१ व २ सह प्रकाशित (सन २००९ में)